के रहस्यों को जानना चाहता है और इसी उद्देश्य से ज्ञान और विज्ञान की प्राप्ति करना चाहता है। इसी हेतु वह साहित्य तथा कहानी, का निर्माण करता है।

ज्ञान तथा धर्म विषयक—प्राचीन काल में ज्ञान और धर्म की शिक्षा देने के लिये छोटी कहानी अथवा दृष्टान्त ही उपयुक्त साधन समझा जाता था, परन्तु उस के दृष्टान्त आदि का अभिप्राय मनोविनोद कभी न था ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा बाइबल के दृष्टान्त इसी प्रकार के हैं। उपनिषद् और महाभारत में भी आख्यायिकाएं ही आध्यात्मिक शिक्षा देने के लिए उपयुक्त समझी गई हैं।

नीति-विषयक—इसके पश्चात नीति-शिक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' सामान्यतया राज-नीति सिखाने के लिये ही लिखे गए। इन ग्रन्थों का पढ़ना 'एक पंथ दो काज' है, मनोविनोद भी होता रहता है और शिक्षा भी मिल जाती है। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि 'पंचतंत्र' एशिया तथा यूरोप के कथा-साहित्य का एक स्रोत-विशेष है।

ऐसी कहानियों के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की कहानियां—कथासरित्सागर, शुकसप्तति, सिंहासन-द्वात्रिंशिका, दशकुमारचरित आदि में मिलती हैं। यात्रा, साहस के काम, छल-धोखा, कूट-चातुरी, अद्भुत अंश आदि इन कहानियों में भरे हुए हैं।

विश्व-कथा-साहित्य पर प्रभाव—कुछ [illegible] हैं कि एशिया तथा यूरोप के कथा-सा[illegible] प्राचीन कहानियों की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। "स[illegible]" के रचना-संगठन में बृहत्कथा की झलक दिखाई देती है [illegible] का प्रभाव किसी से छिपा नहीं। इसके जगद्विख्यात [illegible] को कौन नहीं जानता ? पहलेपहल इसका अनुवाद नौशेरवां [illegible] (५३१—५७६ ई०) के समय में पहलवी भाषा में किया ग[illegible]। तत्पश्चात् इसके कई जगत् प्रसिद्ध भाषान्तर—अरबी में 'कलीलह व दिम्नह' (आठवीं शताब्दी में) फारसी में, 'अनवारि सुहैली' (१४६४

वाद किया । परन्तु यह मानना पड़ेगा कि इस समय की कृतियों में मौलिकता का अभाव ही था ।

३०—३५ वर्ष पहले हिन्दी में कहानी लिखने का रिवाज न था । कभी-कभी संस्कृत, अंग्रेज़ी अथवा बंगला के कथानकों के अनुवाद देखने में आते थे । नवीन, कलापूर्ण, मौलिक, छोटी कहानी हमें पश्चिम से मिली है, परन्तु हर्ष और और आश्चर्य की बात है कि थोड़े ही वर्षों में हिन्दी में उच्च कोटि की कहानियां निर्मित होने लगी है । श्री प्रेमचन्द, प्रसाद जी, कौशिक जी और सुदर्शन जी की कहानियों ने हिन्दी-जगत में ही नहीं, इस से बाहर भी, अच्छी ख्याति प्राप्त की है ।

प्राचीन और नवीन कहानी में अन्तर—यदि हम प्राचीन और आधुनिक कहानियां पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट दीख पड़ेगा कि दोनों में बहुत अन्तर है । प्राचीन कथा प्रायः कौतूहल-प्रधान, आध्यात्म-विषयक अथवा नीति-विषयक होती थी, आधुनिक कहानी का लक्ष्य है—मनोभावों का विश्लेषण और जीवन का यथार्थ चित्रण पुरानी आख्यायिका में कल्पना की मात्रा अधिक थी और वर्तमान कहानी के लिए अधिक तथा तीव्र अनुभूति का होना आवश्यक है । पुरातन कथा में घटना की विचित्रता थी, जिससे मनोविनोद तो हो जाता था, पर उसमें उस रस का अभाव था, जो आजकल की कहानियों में पाया जाता है । प्राचीन कथा में कला की ओर विशेष ध्यान न दिया जाता था, परन्तु आधुनिक गल्प कला का एक नमूना है, जिसकी सृष्टि प्रतिभाशाली कलाकार ही कर सकता है ।

आधुनिक कहानी की कुछ और विशेषताएं—आधुनिक कहानी के सम्बन्ध में कुछ बातें ऊपर बताई जा चुकी हैं । उनके अतिरिक्त कुछ और बातें भी स्मरण रखने योग्य हैं ।

आजकल की कहानी केवल एक चरित्र अथवा घटना को लेकर लिखी जाती है । जहां घटना समाप्त हुई अथवा चरित्र अङ्कित

और भी उत्कृष्ट हो जाती है । मौलिकता, तथा संक्षेप कथानक के गुण-विशेष हैं। कथानक के सुन्दर विकास के लिये दो बातों का होना आवश्यक है—(१) कौतूहल का तारतम्य, और (२) केन्द्र अथवा चरम सीमा।

चरित्र-चित्रण—यदि पात्र इसी जगत के जीते-जागते प्राणी हों तो पाठक की समवेदना स्वतः ही उनके लिये उमड़ पड़ती है; परन्तु यदि वे असाधारण और अलौकिक हों, तो ऐसा होना सम्भव नहीं। चरित्र-चित्रण का प्रमुख गुण यह है कि प्रत्येक पात्र का अपना व्यक्तित्व हो। कहानी के लिए दो-चार पात्र पर्याप्त हैं। हर एक पात्र के चरित्र-चित्रण का कथानक के उद्देश्य के साथ सीधा सम्बन्ध होना चाहिये। पात्रों का चरित्र दो प्रकार से अंकित किया जा सकता है—पात्रों के सम्बन्ध में कुछ बातें कहकर अथवा उनके कथोपकथन द्वारा।

कथोपकथन—कुछ कहानियां वार्तालाप-प्रधान होती हैं। कथोपकथन सरल, स्पष्ट, सजीव, स्वाभाविक तथा भावात्मक होना चाहिये। कथोपकथन से ही कथावस्तु तथा चरित्र-चित्रण का विकास होता है। पात्रों की बात-चीत द्वारा उनके चरित्रों का परिचय कराना ही बढ़िया ढंग समझा जाता है। सब कुछ स्वयं बता देने के स्थान में कथोपकथन द्वारा सुझा देना कहीं अच्छा है। यथासंभव थोड़े शब्दों से काम लेना चाहिये। शब्द नपे-तुले और वाक्य छोटे होने चाहिएं।

शैली—लिखने के ढंग को शैली कहते हैं।

कहानी लिखने के पांच ढंग हैं:—

१. साधारण अथवा वर्णनात्मक, जिसमें पात्रों की बात-चीत के साथ-साथ लेखक अपने विचार भी प्रकट करता है। श्री प्रेमचन्द जी इसी प्रणाली का अनुसरण करते थे।

२. पत्र-प्रणाली, जिसमें पत्रों से काम लिया जाता है। लेखक सीधा, स्वयं विचार प्रकट नहीं करता है, वह चिट्ठियों से कहानी का विकास करता है। इसमें यह दोष है कि घटनाओं की गति तीव्र नहीं हो सकती।

३. डायरी-प्रणाली, जिसमें डायरी का उपयोग किया जाता है।

४. जीवनी-प्रणाली, जिसमें कहानी जीवन के ढंग से लिखी जाती है। इसमें भी लेखक की स्वच्छन्दता जाती रहती है।

५. कथोपकथन-प्रणाली, जिसमें केवल संवाद द्वारा ही कहानी लिखी जाती है।

इन पांचों शैलियों में से प्रथम शैली ही अधिक लोकप्रिय और प्रचलित है।

हर एक लेखक की अपनी शैली होती है, जो उसके व्यक्तित्व का परिचय कराती है। शैली सरल, सुगम, स्वाभाविक, प्रवाहमयी और प्रभावोत्पादक होनी चाहिए। अच्छी शैली के लिए आवश्यक है कि भाषा तथा भाव में सामंजस्य हो, शब्द नपे-तुले हों और अनौचित्य का सर्वथा अभाव हो।

वातावरण—देश, काल तथा परिस्थिति को ही वातावरण कहते हैं। किसी स्थान-विशेष अथवा काल-विशेष के बंधन में रखकर जब कहानी का निर्माण किया जाता है, तो स्वतः ही उसकी वास्तविकता के कारण उसमें अधिक रोचकता आ जाती है। पात्रों के देश-काल का ध्यान रखते हुए उनकी वेश-भूषा, रीति-रिवाज और बोलचाल का ठीक चित्र खींचना कहानी को चार चांद लगाना है। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि विषय तथा वातावरण में ऐक्य स्थापित करना किसी सिद्धहस्त गल्पकार का ही काम है।

कहानी और उपन्यास की तुलना—कहानी के पांच अंग बताए गए हैं। यही पांच अंग उपन्यास के हैं। यद्यपि ये कई बातों में एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं, तथापि कुछ बातों में ये भिन्न हैं। इन दोनों में वही अंतर है जो महाकाव्य और खण्डकाव्य में है। चित्रण में जोड़ने का और लक्षण में घटाने का काम होता है; शिल्प की दृष्टि से उपन्यास तथा कहानी में भी यही भेद है। उपन्यास का क्षेत्र कहानी की अपेक्षा बहुत विस्तीर्ण होता है। उपन्यास में मानव-चरित्र का विकास दिखाया जाता है और कहानी में केवल एक मुख्य भाव

अभिव्यक्त किया जाता है । उपन्यास में बहुत सी घटनाएं होती हैं, परंतु कहानी में थोड़ी-सी घटनाओं का ही उल्लेख करना उचित है । उपन्यास में अनेक आदर्श, सिद्धान्त और संवेदनाएं होती हैं, परंतु कहानी में मुख्य विचार अथवा संवेदना एक ही होती है ।

कहानी का उद्देश्य—कुछ विद्वानों तथा समालोचकों का मत है कि गल्पकार को चाहिए कि वह, अलग-थलग रहकर, निर्लिप्तभाव से इसी संसार की किसी घटना अथवा दृश्य का, या हमारे ही मनोभावों का यथार्थ चित्रण करके पाठकों के सामने रखे ।

उनके मतानुसार 'कला कला के लिए' ही होनी चाहिए । हमारे विचार में कला और उद्देश्य का परस्पर विरोध नहीं, ये दोनों इकट्ठे भी रह सकते हैं । उद्देश्य-सहित कला की कृति साधारण कला की कृति से कहीं अच्छी समझी जानी चाहिए, क्योंकि इसकी रचना महान् कलाकार ही कर सकता है ।

उत्तम कहानी तथा उसका ध्येय—ऊपर बताया गया है कि उत्कृष्ट कहानी में मौलिकता, अनुभूति, यथार्थता, संक्षेप, सूक्ष्म वर्णन, चरित्र-चित्रण तथा केन्द्र अथवा चरम सीमा आदि का होना आवश्यक है । उत्तम गल्प वही है जिसमें सजीवता हो, शक्ति हो, सौन्दर्य हो और आवेगों की चरम सीमा हो । ऐसी कहानी लिखने के लिए मानसिक बल, अनुभूति की तीव्रता और प्रबल सृजन-शक्ति की आवश्यकता है, सहज प्रतिभा और दिव्य-दृष्टि की जरूरत है ।

स्पष्ट है कि ऊंचे दर्जे की कहानियां गिनी-चुनी ही हो सकती हैं । अधिकांश कहानियां निचले दर्जे की होती हैं जो कला से दूर और दोषों तथा अनावश्यक बातों से रहित नहीं होतीं ।

गल्प साहित्य का ही अंग है । साहित्य क्या है—जीवन की आलोचना है । साहित्यकार सत्य, शिव तथा सुन्दर का साक्षात्कार स्वयं करता है और दूसरों को कराता है ।

वही साहित्य तथा गल्प उच्च कोटि की समझी जानी चाहिए,

जिसमें ऊंचे भाव हों, सौन्दर्य का तत्त्व हो, जीवन की सचाइयां हों। साहित्य को केवल मन-बहलाव तथा विलासिता का साधन बनाना अक्षम्य भूल है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे गल्पकार ऊंचे आदर्श को सामने रखकर गल्प-निर्माण करें जो हमें साधारण जीवन से उठा कर आदर्श-जीवन की ओर ले जाएँ, जो हम में दैवी भाव भर दें, शक्ति तथा साहस का संचार कर दें।

चन्द्रभवन,
कृष्णनगर, लाहौर।
१४ जून, १९४१

दुनीचन्द

श्री प्रेमचन्द जी

[सन् १८८०—१९३६]

प्रेमचन्द आप का साहित्यिक नाम है। आप का असली नाम धनपतराय था। आप मढ़वा-ग्राम (जिला बनारस) के निवासी थे और एक कुलीन कायस्थ परिवार में आपका जन्म हुआ था।

आप अंग्रेज़ी तथा फारसी के अच्छे विद्वान् थे और उर्दू हिन्दी दोनों पर आपका पूरा अधिकार था। बी० ए० की परीक्षा पास कर आप पहले अध्यापक नियत हुए। कुछ समय पश्चात् आपको इस पद से त्यागपत्र देना पड़ा। तदनन्तर आप प्रेस के मालिक, सम्पादक, सिनेरियो-लेखक आदि बहुत से पदों पर रहे, परन्तु प्रत्येक अवस्था में साहित्य-सेवा करते ही रहे। आप ने न केवल उर्दू के लेखकों में उच्च पद पाया है, परन्तु हिन्दी संसार में भी अनुपम मौलिक उपन्यासकार और गल्पकारसम्राट् होने के कारण महान् गौरव का स्थान प्राप्त किया है।

जाति-सुधार तथा देशोन्नति की इच्छा आप में कूट कूट कर भरी हुई थी। आप सीधे सादे और सरल-स्वभाव थे तथा सत्य, त्याग और उदारता आदि गुणों से विभूषित थे।

आप ने निम्नलिखित ग्रन्थों का निर्माण किया—

गल्प-संग्रह—प्रेम-पचीसी, प्रेमद्वादशी, प्रेमपंचमी, नवनिधि, प्रेमपूर्णिमा, प्रेमतीर्थ इत्यादि।

उपन्यास—कायाकल्प, रंगभूमि, सेवासदन, प्रेमाश्रम, प्रतिज्ञा, कर्मभूमि, ग़बन इत्यादि।

नाटक—प्रेम की वेदी, कर्बला।

प्रेमचन्द जी समाज की घटनाओं के आधार पर व्यंग्य के रूप में कहानियां लिखते थे। आप की कहानियां लक्ष्ययुक्त तथा शिक्षाप्रद हैं। वे शुभ विचार और ऊंचे भाव पैदा करने के लिए लिखी गई हैं। आप इन कहानियों के द्वारा देशभक्ति, त्याग वीरता आदि गुण पाठकों के मन में उत्पन्न करना चाहते थे। घरेलू तथा ग्रामीण जीवन के ऐसे सजीव चित्र आपने खींचे हैं, जो पाठकों को मुग्ध कर देते हैं। मनोभावों को अंकित करने में तथा चरि[illegible] सिद्धहस्त थे।

आप की भाषा मँजी हुई, सरल, सुगम, मधुर और रसीली है, वह ठे हिन्दी का सच्चा नमूना है। कहीं कहीं उर्दू शब्दों का प्रयोग ऐसे स्वाभाविक ढं से किया गया है कि भाषा और भी चित्ताकर्षक हो गई है। मुहाविरों, लोको क्तियों, उपमाओं तथा अन्य अलंकारों ने आप की शैली को अधिक सुन्दर तथ प्रभावोत्पादक बना दिया है।

आप की कहानियां बड़े आदर और चाव से पढ़ी जाती हैं। उन में प्रवा है, अलौकिक रस है, एक प्रकार का जादू है। जिस भी कहानी को पढ़ना आरंभ कीजिए, समाप्त किए बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। इसी लिए प्रेमचन्द जी सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वप्रिय कहानी-लेखक और गल्प-कला के आचार्य समझे जाते हैं।

मुक्ति-मार्ग

सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुन्दरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमण्ड होता है, वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देख कर होता है। झींगुर, अपने ऊख के खेतों को देखता, तो उस पर नशा—सा छा जाता! तीन बीघे ऊख थी। इससे छः सौ रुपये तो अनायास ही मिल जायेंगे। और, जो कहीं भगवान् ने डांड़ी तेज़ कर दी, तो फिर क्या पूछना। दोनों बैल बुड्ढे हो गए। अब की नई गोई बटेसुर के मेले से ले आवेगा। कहीं दो बीघे खेत और मिल गए, तो लिखा लेगा। रुपयों की क्या चिन्ता है? बनिए अभी अभी से उसकी खुशामद करने लगे थे। ऐसा कोई न था, जिससे उसने गांव में लड़ाई न की हो। वह अपने आगे किसी को कुछ समझता ही न था।

एक दिन सन्ध्या के समय वह अपने बेटे को गोद में लिए मटर की फलियां तोड़ रहा था। इतने में उसे भेड़ों का एक झुण्ड अपनी ...ता दिखाई दिया। वह अपने मन में कहने लगा—इधर ...ने निकालने का रास्ता न था। क्या खेत की मेड़ पर से

भेड़ों का झुण्ड नहीं जा सकता था ? भेड़ों को इधर से लाने की क्या ज़रूरत ? ये खेत को कुचलेंगी, चरेंगी । इसका डांड़ कौन देगा ? मालूम होता है, बुद्धू गड़रिया है । बच्चा को घमण्ड हो गया है; तभी तो खेतों के बीच से भेड़े लिए चला आता है। ज़रा इसकी ढिठाई तो देखो । देख रहा है कि मैं खड़ा हूं, फिर भी भेड़ों को लौटाता नहीं । कौन मेरे साथ कभी रिआयत की है कि मैं इसकी मुरौवत करूं ? अभी एक भेड़ी मोल मांगूँ, तो पांच ही रुपए सुनावेगा। सारी दुनियां में चार—चार रुपए के कम्बल बिकते हैं, पर वह पांच रुपए से नीचे बात नहीं करता।

इतने में भेड़ें खेत के पास आ गईं । झींगुर ने ललकार कर कहा—अरे, ये भेड़ें कहां लिए आते हो ? कुछ सूझता है, कि नहीं ?

बुद्धू नम्र भाव से बोला—महतो, डांड़ पर निकल जाएंगी। घूम कर जाऊंगा तो कोस-भर का चक्कर पड़ेगा।

झींगुर—तो तुम्हारा चक्कर बचाने के लिए मैं अपना खेत क्यों कुचलाऊंगा ? डांड़े ही पर से ले जाना है तो और खेतों के डांड़ से क्यों नहीं ले गए ? क्या मुझे कोई चुहड़—चमार समझ लिया है ? या धन का घमण्ड हो गया है ? लौटाओ इनको !

बुद्धू—महतो आज निकल जाने दो; फिर कभी इधर से आऊं, तो जो चाहे सजा देना।

झींगुर– कह दिया कि लौटाओ इन्हें। अगर एक भेड़ भी मेड़ पर आई, समझ लो तुम्हारी खैर नहीं है।

बुद्धू—महतो, अगर तुम्हारी एक बेल भी किसी भेड़ के पैरोंतले आजाय, तो मुझे बिठा कर सौ गालियां देना।

बुद्धू बातें तो बड़ी नम्रता से कह रहा था, किन्तु लौटाने में अपनी हेठी समझता था । उसने मन में सोचा—इसी तरह ज़रा-ज़रा सी धमकियों पर भेड़ों को लौटाने लगा, तो फिर मैं भेड़ें चरा चुका ! आज लौट जाऊं, तो कल को निकलने का रास्ता ही न मिलेगा। रोब जमाने लगेंगे।

बुद्धू भी पोढ़ा आदमी था। बारह कोड़ी भेड़ें थीं। उन्हें [illegible] में बिठाने के लिए फ़ी रात आठ आने कोड़ी मजदूरी मिलती थी। इ[illegible] उपरांत दूध बेचता था; ऊन के कम्बल बनाता था सोचने लगा—इ[illegible] गरम हो रहे हैं, मेरा कर ही क्या लेंगे ? कुछ इनका दबैल तो नहीं। भेड़ों ने जो हरी-हरी पत्तियां देखीं तो अधीर हो गईं। [illegible] में घुस पड़ीं। बुद्धू उन्हें डंडों से मार-मारकर खेत के किनारे से हटा था और वे इधर-उधर से निकलकर खेत में जा पड़ती थीं। झींगुर आग होकर कहा – तुम मुझसे हेकड़ी जताने चले हो तो तुम्हारी सा[illegible] हेकड़ी निकाल दूँगा।

बुद्धू—तुम्हें देखकर चौंकती हैं। तुम हट जाओ, तो मैं सबक[illegible] निकाल ले जाऊँ।

झींगुर ने लड़के को तो गोद से उतार दिया और अपना डंडा सँभालकर भेड़ों पर पिल पड़ा। धोबी इतनी निर्दयता से अपने गधे को न पीटता होगा। किसी भेड़ की टांग टूटी, किसी की कमर टूटी। सबने बें-बें का शोर मचाना शुरू किया। बुद्धू चुपचाप खड़ा अपनी सेना का विध्वंस अपनी आंखों से देखता रहा। वह न भेड़ों को हांकता था, न झींगुर से कुछ कहता था। बस, खड़ा तमाशा देखता रहा। दो मिनट में झींगुर ने इस सेना को अपने अमानुपिक पराक्रम से मार भगाया। मेष-दल का संहार करके विजय-गर्व से बोला—अब सीधे चले जाओ, फिर इधर आने का नाम न लेना।

बुद्धू ने आहत भेड़ों की ओर देखते हुए कहा—झींगुर, तुमने यह अच्छा काम नहीं किया, पछताओगे!

२

केले को काटना भी इतना आसान नहीं है, जितना किसान से बदला लेना। उसकी सारी कमाई खेतों में रहती है या खलि-हानों में। कितनी ही दैवी और भौतिक बाधाओं के बाद नाज घर में आता है। और, जो कहीं इन बाधाओं के साथ मानवीय क्रोध ने भी

सन्धि कर ली, तो बेचारा किसान कहीं का नहीं रहता। झींगुर ने घर आकर दूसरों से उस संग्राम का वृत्तान्त कहा तो लोग समझाने लगे—झींगुर, तुमने बड़ा अनर्थ किया। जानकर अनजान बनते हो! बुद्धू को जानते नहीं, कितना झगड़ालू आदमी है! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। जाकर उसे मना लो, नहीं तो तुम्हारे साथ सारे गांव पर आफ़त आ जायगी। झींगुर की समझ में बात आई। पछताने लगा कि मैंने कहां-से कहां उसे रोका। अगर भेड़ें थोड़ा-बहुत चर ही जातीं, तो कौन मैं उजड़ा जाता था। हम किसानों का कल्याण तो दबे रहने में ही है। ईश्वर को भी हमारा सिर उठा कर चलना अच्छा नहीं लगता। जी तो बुद्धू के घर जाने को न चाहता था, किन्तु दूसरों के आग्रह से मजबूर होकर चला। अगहन का महीना था, कुहरा पड़ रहा था, चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। गांव से बाहर निकला ही था कि सहसा अपने ऊख के खेत की ओर अग्नि की ज्वाला देख कर चौंक पड़ा। छाती धड़कने लगी। खेत में आग लगी हुई थी। बेतहाशा दौड़ा। मनाता जाता था कि मेरे खेत में न हो; पर ज्यों-ज्यों समीप पहुंचता था, यह आशामय भ्रम शांत होता जाता था। वह अनर्थ हो ही गया, जिसके निवारण के लिए घर से चला था। हत्यारे ने आग लगा ही दी और मेरे पीछे सारे गांव को चौपट किया। उसे ऐसा जान पड़ता था कि वह खेत आज बहुत समीप आ गया है; मानो बीच के परती खेतों का अस्तित्व ही नहीं रहा। अन्त में जब वह खेत पर पहुंचा, तो आग प्रचण्ड रूप धारण कर चुकी थी। झींगुर ने 'हाय-हाय' मचाना शुरू किया। गांव के लोग दौड़ पड़े और खेतों से अरहर के पौधे उखाड़-उखाड़ कर आग को पीटने लगे। अग्नि-मानव संग्राम का भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। एक पहर तक हाहाकार मचा रहा। कभी एक पक्ष प्रबल होता था, कभी दूसरा। अग्नि-पक्ष के योद्धा मर-मर कर उठते थे और द्विगुणित श[illegible] रणोन्मत्त होकर [illegible] करने लगते थे। मानव-पक्ष

योद्धा की कीर्ति सब से उज्ज्वल थी, बुद्धू था। वह बुद्धू कमर तक धोती चढ़ाए, प्राण हथेली पर लिए, अग्नि-राशि में कूद पड़ता था और शत्रुओं को परास्त करके बाल-बाल बच कर, निकल आता था। अन्त में मानव दल की विजय हुई; किन्तु ऐसी विजय जिस पर हार भी हँसती। गांव-भर की ऊख जल कर भस्म हो गई और ऊख के साथ किसानों की सारी अभिलाषाएँ भी भस्म हो गईं।

३

आग किसने लगाई, यह खुला हुआ भेद था, पर किसी को कहने का साहस न होता था। कोई सबूत नहीं। प्रमाण-हीन तर्क का मूल्य ही क्या? झींगुर को घर से निकलना मुश्किल हो गया। जिधर जाता, ताने सुनने पड़ते। लोग प्रत्यक्ष कहते थे—यह आग तुमने लगवाई। तुम्हींने हमारा सर्वनाश किया। तुम्हीं मारे घमंड के धरती पर पैर न रखते थे। आप-के-आप गए, अपने साथ गाँव-भर को डुबो दिया। बुद्धू को न छेड़ते, तो आज क्यों यह दिन देखना पड़ता? झींगुर को अपनी बरबादी का इतना दुःख न था, जितना इन जली-कटी बातों का। दिन-भर घर में बैठा रहता। पूस का महीना आया। जहां सारी रात कोल्हू चला करते थे, गुड़ की सुगंध उड़ती थी, भट्ठियां जलती रहती थीं और लोग भट्ठियों के सामने बैठे हुक्का पिया करते थे, वहां सन्नाटा छाया हुआ था। ठंड के मारे लोग सांझ ही से किवाड़ बंद करके पड़ रहते और झींगुर को कोसते। माघ और भी कष्टदायक था। ऊख केवल धनदाता ही नहीं, किसानों का जीवनदाता भी है। उसी के सहारे किसानों का जाड़ा कटता है—गरम रस पीते हैं, ऊख की पत्तियां तापते हैं, उसके अगोड़े पशुओं को खिलाते हैं। गाँव के सारे कुत्ते, जो रात को भट्ठियों की राख में सोया करते थे, ठंड से मर गये। कितने ही जानवर चारे के अभाव से चल बसे। शीत का प्रकोप हुआ और सारा गांव खांसी-बुखार में ग्रस्त हो गया।

और यह सारी विपत्ति झींगुर की करनी थी—अभागे, हत्यारे झींगुर की!

झींगुर ने सोचते-सोचते निश्चय किया कि बुद्धू की दशा भी अपनी ही-सी बनाऊँगा। उसके कारण मेरा सर्वनाश हो गया और वह चैन की बंसी बजा रहा है। मैं भी उसका सर्वनाश करूंगा।

जिस दिन इस घातक कलह का बीजारोपण हुआ उसी दिन से बुद्धू ने इधर आना छोड़ दिया था। झींगुर ने उससे रब्त-ज़ब्त बढ़ाना शुरू किया। वह बुद्धू को दिखाना चाहता था कि तुम्हारे ऊपर मुझे बिलकुल संदेह नहीं है। एक दिन कंबल लेने के बहाने गया, फिर दूध लेने के बहाने। बुद्धू उसका खूब आदर-सत्कार करता। चिलम तो आदमी दुश्मन को भी पिला देता है, वह उसे बिना दूध और शर्बत पिलाए न आने देता। झींगुर आजकल एक सन लपेटने वाली कल में मज़दूरी करने जाया करता था। बहुधा कई-कई दिनों की मज़दूरी इकट्ठी मिलती थी। बुद्धू ही की तत्परता से झींगुर का रोज़ाना खर्च चलता था, अतएव झींगुर ने खूब रब्त-ज़ब्त बढ़ा लिया। एक दिन बुद्धू ने पूछा—क्यों झींगुर, अगर अपनी ऊख जलानेवाले को पा जाओ तो क्या करो? सच कहना।

झींगुर ने गम्भीर भाव से कहा—मैं उससे कहूँ, भैया तुमने जो कुछ किया बहुत अच्छा किया। मेरा घमण्ड तोड़ दिया; मुझे आदमी बना दिया।

बुद्धू—मैं जो तुम्हारी जगह होता, तो बिना उसका घर जलाए न मानता।

झींगुर—चार दिन की ज़िन्दगानी में वैर-विरोध बढ़ाने से क्या फ़ायदा? मैं तो बरबाद हुआ ही, अब उसे बरबाद करके क्या पाऊँगा?

बुद्धू—बस, यही तो आदमी का धर्म है; पर भाई क्रोध के बस होकर बुद्धि उलटी हो जाती है।

४

फागुन का महीना था। किसान ऊख बोने के लिए

तैयार कर रहे थे। बुद्धू का बाज़ार गरम था। भेड़ों की लूट मची हुई थी। दो-चार आदमी नित्य द्वार पर खड़े खुशामदें किया करते। बुद्धू किसी से सीधे मुँह बात न करता। भेड़ रखने की फ़ीस दूनी कर दी थी। अगर कोई एतराज़ करता, तो बेलाग कहता – तो भैया, भेड़ें तुम्हारे गले तो नहीं लगाता हूँ। जी न चाहे, मत रक्खो; लेकिन मैंने जो कह दिया है, उससे एक कौड़ी भी कम नहीं हो सकती। गरज़ थी, लोग इस रुखाई पर भी उसे घेरे रहते थे, मानो पण्डे किसी यात्री के पीछे पड़े हों।

लक्ष्मी का आकार तो बहुत बड़ा नहीं, और जो है, वह भी समयानुसार छोटा-बड़ा होता रहता है यहां तक कि कभी वह अपना विराट् आकार समेटकर उसे कागज़ के चन्द अक्षरों में छिपा लेती है; कभी-कभी तो मनुष्य की जिह्वा पर जा बैठती है, आकार का लोप हो जाता है; किन्तु उनके रहने को बहुत स्थान की ज़रूरत होती है। वह आई और घर बढ़ने लगा। छोटे घर में लक्ष्मी से नहीं रहा जाता। बुद्धू का घर भी बढ़ने लगा। द्वार पर बरामदा डाला गया, दो की जगह छः कोठरियां बनवाई गईं। यों कहिए कि मकान नए सिरे से बनने लगा। किसी किसान से लकड़ी मांगी, किसी से खपरों का आवा लगाने के लिए उपले, किसी से बाँस और किसी से सरकण्डे। दीवार की उठवाई देनी पड़ी। वह भी नक़द नहीं, भेड़ों के बच्चों के रूप में। लक्ष्मी का यह प्रताप है। सारा काम बेगार में हो गया। अन्त में अच्छा-खासा घर, तैयार हो गया। गृह-प्रवेश के उत्सव की तैयारियां होने लगीं।

इधर झींगुर दिन-भर मज़दूरी करता, तो कहीं आधे पेट अन्न मिलता। बुद्धू के घर कंचन बरस रहा था। झींगुर जलता था तो क्या बुरा करता था ? यह अन्याय किससे सहा जायगा ?

एक दिन वह टहलता हुआ चमारों के टोले की तरफ़ चला गया। हरिहर को पुकारा। हरिहर ने आकर राम-राम की और चिलम भरी। [illegible] लगे। यह चमारों का मुखिया बड़ा दुष्ट आदमी था। सब [illegible] इससे थर थर कांपते थे।

झींगुर ने चिलम पीते-पीते कहा—आज कल फाग-वाग नहीं होता क्या ? सुनाई नहीं देता।

हरिहर—फाग क्या हो, पेट के धन्धे से छुट्टी ही नहीं मिलती। कहो, तुम्हारी आज कल कैसी निभती है ?

झींगुर—क्या निभती है। नकटा जिया बुरे हवाल ! दिन-भर कल में मज़दूरी करते हैं, तो चूल्हा जलता है। चाँदी तो आजकल बुद्धू की है। रखने को ठौर नहीं मिलता। नया घर बना, भेड़ें और ली है। अब गृहप्रवेश की धूम है। सातों गांवों में सुपारी जायगी।

हरिहर—लक्ष्मी मैया आती हैं तो आदमी की आंखों में सील आजाता है; पर उसको देखो, धरती पर पैर नही रखता। बोलता है, तो ऐंठकर बोलता है।

झींगुर—क्यों न ऐंठे, इस गांव में कौन है उसकी टक्कर का ? पर यार, यह अनीति नहीं देखी जाती। भगवान् दे, तो सिर झुका कर चलना चाहिए। यह नहीं कि अपने बराबर किसी को समझे ही नहीं। उसकी डींग सुनता हूँ, तो बदन में आग लग जाती है। कल का बाधी आज का सेठ। चला है हमीं से अकड़ने। अभी कल लँगोटी लगाए खेतों में कौए हँकाया करता था, आज उसका आसमान में दिया जलता है।

हरिहर—कहो, तो कुछ उताजोग करूँ ?

झींगुर—क्या करोगे ? इसी डर से तो वह गाय भैंस नहीं पालता।

हरिहर—भेड़ें तो हैं ?

झींगुर—क्या बगला मारे पखना हाथ।

हरिहर—फिर तुम्हीं सोचो।

झींगुर—ऐसी जुगुत निकालो, कि फिर पनपने न पावे। इसके बाद फुस-फुस करके बात होने लगी। यह एक रहस्य है कि भलाइयों में जितना द्वेष होता है, बुराइयों में उतना ही प्रेम। विद्वान् विद्वान् को देखकर, साधु साधु को देखकर और कवि कवि को देखकर

है। एक दूसरे की सूरत नहीं देखना चाहता; पर जुआरी जुआरी को देखकर, शराबी शराबी को देखकर, चोर चोर को देखकर सहानुभूति दिखाता है, सहायता करता है। एक पंडित जी अगर अँधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़ें, तो दूसरे पंडित जी उन्हें उठाने के बदले दो ठोकरें और लगावेंगे कि वह फिर उठ ही न सकें; पर आफ़त आई देख दूसरा चोर उसकी आड़ कर लेता है। बुराई से सब घृणा करते हैं इसलिए बुरों में परस्पर प्रेम होता है। भलाई की सारा संसार प्रशंसा करता है, इसलिये भलों में विरोध होता है। चोर को मार कर चोर क्या पावेगा? घृणा। विद्वान् का अपमान करके विद्वान् क्या पावेगा? यश।

झींगुर और हरिहर ने सलाह कर ली। षड्यन्त्र रचने की विधि सोची गई। उसका स्वरूप, समय और क्रम ठीक किया गया। झींगुर चला, तो अकड़ा जाता था। मार लिया दुश्मन को, अब कहां जाता है!

४

दूसरे दिन झींगुर काम पर जाने लगा, तो पहले बुद्धू के घर पहुँचा। बुद्धू ने पूछा—क्यों आज काम पर नहीं गए क्या?

झींगुर—जा तो रहा हूँ। तुमसे यही कहने आया था कि मेरी बछिया को अपनी भेड़ों के साथ क्यों नहीं चरा दिया करते। बेचारी खूँटे से बँधी-बँधी मरी जाती है। न घास, न चारा, क्या खिलावें?

बुद्धू—भैया, मैं गाय भैंस नहीं रखता। चमारों को जानते हो, एक ही हत्यारे होते हैं। इसी हरिहर ने मेरी दो गउएँ मार डालीं। न जाने क्या खिला देता है। तब से कान पकड़े कि अब गाय-भैंस न पालूँगा; लेकिन तुम्हारी एक ही बछिया है, उसका कोई क्या करेगा। जब चाहो पहुंचा दो।

यह कह कर बुद्धू अपने गृहोत्सव का सामान दिखाने लगा। घी, शकर, मैदा, तरकारी सब मँगा रक्खा था। केवल 'सत्यनारायण' की देर थी। झींगुर की आंखें खुल गईं। ऐसी तैयारी न

उसने स्वयं कभी की थी और न कभी किसी को करते देखा था। मजदूरी करके घर लौटा तो सब से पहले जो काम उसने किया, वह अपनी बछिया को बुद्धू के घर पहुंचाना था। उसी रात को बुद्धू के यहां 'सत्यनारायण की कथा' हुई। ब्रह्मभोज भी किया गया। सारी रात विप्रों का आगत-स्वागत करते गुज़री। बुद्धू को भेड़ों के झुण्ड में जाने का अवकाश ही न मिला। प्रातः काल भोजन करके उठा ही था (क्योंकि रात का भोजन सवेरे मिला था) कि एक आदमी ने खबर दी—'बुद्धू, तुम यहां बैठे हो, उधर भेड़ों में बछिया मरी पड़ी है। भले आदमी, उसकी पगहिया नहीं खोली थी?

बुद्धू ने सुना, और मानो ठोकर लग गई। झींगुर भी भोजन करके वहीं बैठा था। बोला—हाय मेरी बछिया! चलो, ज़रा देखूँ तो, मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी। उसे भेड़ों में पहुंचा कर अपने घर चला गया। तुमने वह पगहिया कब लगा दी?

बुद्धू—भगवान् जानें, जो मैंने उसकी पगहिया देखी भी हो। मैं तो तब से भेड़ों में गया ही नहीं।

झींगुर—जाते न तो पगहिया कौन लगा देता? गए होंगे, याद न आती होगी।

एक ब्राह्मण—मरी तो भेड़ों में ही न? दुनियां तो यही कहेगी कि बुद्धू की असावधानी से उसकी मृत्यु हुई। पगहिया किसी की हो।

हरिहर—मैंने कल सांझ को इन्हें भेड़ों में बछिया को बांधते देखा था।

बुद्धू—मुझे!

हरिहर—तुम नहीं लाठी कन्धे पर रक्खे बछिया को बाँध रहे थे?

बुद्धू—बड़ा सच्चा है तू! तूने मुझे बछिया को बाँधते देखा था?

हरिहर—तो मुझ पर काहे को बिगड़ते हो भाई? तुमने नहीं बाँधी, नहीं सही।

ब्राह्मण—इसका निश्चय करना होगा। गो-हत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। कुछ हँसी-ठट्ठा है!

झींगुर—महराज, कुछ जान-बूझकर तो बाँधी नहीं।

ब्राह्मण—इसमें क्या होता है ? हत्या इसी तरह लगती है, कोई गऊ को मारने नहीं जाता।

झींगुर—हाँ, गउओं का खोलना-बाँधना है तो जोखिम का काम।

ब्राह्मण—शास्त्रों में इसे महापाप कहा है। गऊ की हत्या ब्राह्मण की हत्या से कम नहीं।

झींगुर—हाँ, फिर गऊ तो ठहरी ही। इसी से न इसका मान होता है। जो माता, सो गऊ; लेकिन महराज, चूक हो गई। कुछ ऐसा कीजिये कि थोड़े में बेचारा निपट जाय।

बुद्धू खड़ा सुन रहा था कि अनायास मेरे सिर हत्या मढ़ी जा रही है। झींगुर की कूटनीति भी समझ रहा था। मैं लाख कहूँ, मैंने बछिया नहीं बाँधी, मानेगा कौन ? लोग यही कहेंगे कि प्रायश्चित्त से बचने के लिये ऐसा कह रहा है।

ब्राह्मण-देवता का भी उसका प्रायश्चित्त कराने में कल्याण होता था। भला ऐसे अवसर पर कब चूकने वाले थे। फल यह हुआ कि बुद्धू को हत्या लग गई। ब्राह्मण भी उससे जले हुए थे। कसर निकालने की घात मिली। तीन मास का भिक्षा-दण्ड दिया, फिर सात तीर्थ-स्थानों की यात्रा, उस पर पांच सौ विप्रों को भोजन और पाँच गउओं का दान। बुद्धू ने सुना, तो बधिया बैठ गई। रोने लगा तो दण्ड घटाकर दो मास का कर दिया गया। इसके सिवा कोई रिआयत न हो सकी। न कहीं अपील, न कहीं फ़रियाद! बेचारे को यह दण्ड स्वीकार करना पड़ा।

६

बुद्धू ने भेड़ें ईश्वर को सौंपीं। लड़के छोटे थे। स्त्री अकेली क्या-क्या करेगी! जाकर द्वारों पर खड़ा होता और मुँह छिपाए हुए कहता—गाय की बाछी दियो बनबास। भिक्षा तो मिल जाती; किन्तु भिक्षा के साथ दो-चार कठोर, अपमान-जनक शब्द भी सुनने
दिन को जो कुछ पाता, वही शाम को किसी पेड़ के नीचे

बनाकर खा लेता और वहीं पड़ा रहता। कष्ट की तो उसे परवा न थी, भेड़ों के साथ दिन-भर चलता ही था, पेड़ के नीचे सोता ही था, भोजन भी इससे कुछ ही अच्छा मिलता होगा; पर लज्जा थी भित्ता मांगने की। विशेष करके जब कोई कर्कशा यह व्यंग्य कर देती थी कि रोटी कमाने का अच्छा ढंग निकाला है, तो उसे हार्दिक वेदना होती थी; पर करे क्या!

दो महीने के बाद वह घर लौटा। बाल बढ़े हुए थे। दुर्बल इतना, मानो साठ वर्ष का बूढ़ा हो। तीर्थयात्रा के लिये रुपयों का प्रबन्ध करना था। गड़रियों को कौन महाजन क़र्ज़ दे? भेड़ों का भरोसा क्या? कभी-कभी रोग फैलाता है, तो रात-भर में दल का दल साफ़ हो जाता है। उस पर जेठ का महीना, जब भेड़ों से कोई आमदनी होने की आशा नहीं। एक तेली राज़ी भी हुआ तो दो आना रुपया ब्याज पर आठ महीने में ब्याज मूल के बराबर हो जायगा। यहाँ क़र्ज़ लेने की हिम्मत न पड़ी। इधर दो महीनों में कितनी ही भेड़ें चोरी चली गई थीं। लड़के चराने ले जाते थे। दूसरे गाँव वाले चुपके से एक-दो भेड़ें किसी खेत या घर में छुपा देते और पीछे मार कर खा जाते। लड़के बेचारे एक तो पकड़ न सकते, और जो देख भी लेते, तो लड़ें क्योंकर। सारा गाँव एक हो जाता था। एक महीने में तो भेड़ें आधी भी न रहेंगी। बड़ी विकट समस्या थी। विवश होकर बुद्धू ने एक बूचड़ को बुलाया और सब भेड़ें उसके हाथ बेच डालीं। पाँच सौ रुपये हाथ लगे। उसमें से दो सौ रुपये लेकर वह तीर्थ-यात्रा करने गया। शेष रुपये ब्रह्मभोज आदि के लिये छोड़ गया।

बुद्धू के जाने पर उसके घर में दो बार सेंध लगी; पर यह कुशल हुई कि जगहर हो जाने के कारण रुपये बच गये।

७

सावन का महीना था। चारों ओर हरियाली छाई हुई थी। झींगुर के बैल न थे। खेत बटाई पर दे दिए थे। बुद्धू प्रायश्चित्त से निवृत्त हो गया था, और उसके साथ ही माया फंदे से भी।

झींगुर के पास कुछ था, न बुद्धू के पास। कौन किससे जलता, और किस लिए जलता ?

सन की कल बन्द हो जाने के कारण झींगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हज़ारों मजदूर काम करते थे। झींगुर भी उन्हीं में था। सातवें दिन मज़दूरी के पैसे लेकर घर आता और रात-भर रहकर सवेरे फिर चला जाता था।

बुद्धू भी मज़दूरी की टोह में यहीं पहुंचा। जमादार ने देखा, दुर्बल आदमी है, कठिन काम तो इससे हो न सकेगा, कारीगरों को गारा देने के लिये रख लिया। बुद्धू सिर पर तसला रक्खे, गारा लेने गया, तो झींगुर को देखा। राम-राम हुई, झींगुर ने गारा भर दिया, बुद्धू उठा लाया। दिन-भर दोनों चुपचाप अपना-अपना काम करते रहे।

सन्ध्या—समय झींगुर ने पूछा—कुछ बनाओगे न ?

बुद्धू—नहीं तो खाऊगा क्या ?

झींगुर—मैं तो एक जून चबेना कर लेता हूं। इस जून सत्तू पर काट देता हूँ। कौन झंझट करे।

बुद्धू—इधर-उधर लड़कियाँ पड़ी हुई हैं, बटोर लाओ। आटा मैं घर से लेता आया हूँ। घर ही पर पिसवा लिया था। यहां तो बड़ा महँगा मिलता है। इसी पत्थर की चट्टान पर आटा गूँधे लेता हूँ। तुम तो मेरा बनाया खाओगे नहीं, इसलिये तुम्हीं रोटियाँ सेंको, मैं बना दूंगा।

झींगुर—तवा भी तो नहीं है ?

बुद्धू—तवे बहुत हैं। यही गारे का तसला माँजे लेता हूं।

आग जली, आटा गूँधा गया। झींगुर ने कच्ची-पक्की रोटियां बनाईं। बुद्धू पानी लाया। दोनों ने लाल मिर्च और नमक से रोटियां खाईं। फिर चिलम भरी गई। दोनों आदमी पत्थर की सिलों लेट गए, और चिलम पीने लगे।

बुद्धू ने कहा—तुम्हारी ऊख में आग मैंने लगाई थी।

झींगुर ने विनोद के भाव से कहा—जानता हूँ।

थोड़ी देर के बाद झींगुर बोला—बछिया मैंने ही बाँधी थी और हरि ८ ने उसे कुछ खिला दिया था।

बुद्धू ने वैसे ही भाव से कहा—जानता हूँ।

फिर दोनों सो गए।

शतरंज के खिलाड़ी

१

वाजिद अलीशाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब, सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता, तो कोई अफ़ीम की पीनक ही के मज़े लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धन्धों में, आहार-व्यवहार में सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मिस्सी और उबटन का रोज़गार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिये पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है, पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहां तक कि फ़क़ीरों को पैसे मिलते, तो वे रोटियाँ न लेकर अफ़ीम खाते या शराब पीते। शतरंज, ताश, गंजीफ़ा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है, ये दलीलें ज़ोर के साथ पेश की जाती थीं।—इस संप्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी खाली

नहीं है।—इसलिये यदि मिर्ज़ा सज्जादअली और मीर रौशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं, जीविका की कोई चिन्ता न थी, घर में मौज करते थे। आखिर और करते ही क्या! प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछाकर बैठ जाते, मुहरे सज जाते, दाँव-पेंच होने लगते; फिर खबर न होती थी कि कब दोपहर हुई, कब तीसरा पहर, कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता - खाना तैयार है। यहाँ से जवाब मिलता—चलो, आते हैं; दस्तरख्वान बिछाओ। यहाँ तक कि बावरची विवश होकर कमरे ही में खाना रख जाता था और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे। मिर्ज़ा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था, इसलिये उन्हीं के दीवानखाने में बाज़ियाँ होती थीं; मगर यह बात न थी कि मिर्ज़ा के घर के और लोग उनके इस व्यवहार से खुश हों। घर वालों का तो क़हना ही क्या, महल्लेवाले, घरके नौकर-चाकर तक नित्य द्वेष-पूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे—बड़ा मनहूस खेल है, घर को तबाह कर देता है, खुदा न करे, किसी को इसकी चाट पड़े। आदमी दीन, दुनिया, किसी के काम का नहीं रहता, न घर का न घाट का। बुरा रोग है। यहां तक कि मिर्ज़ा की बेगम साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोज कर पति को लड़ाती थीं पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोती ही रहती थीं, तब तक उधर बाज़ी बिछ जाती थी, और रात को जब सो जाती थीं, तब कहीं मिर्ज़ाजी भीतर आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थीं—क्या पान माँगे हैं? कह दो, आकर ले जायँ। खाने को भी फ़ुर्सत नहीं है? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो; खायँ चाहे कुत्ते को खिलावें; पर सामने वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतनी नाराज़गी न थी, जितनी मीर साहब से। उन्होंने उनका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद

मेर्ज़ाजी अपनी सफ़ाई देने के लिये सारा इल्ज़ाम मीर साहब ही के सिर पर थोप देते थे।

एक दिन बेगम साहबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्हों ने लौंडी से कहा—जाकर मिर्ज़ा साहब को बुला ला। किसी हकीम के य से दवा लावें। दौड़ जल्दी कर। लौंडी गई, तो मिर्ज़ाजी ने कहा-चल, अभी आते हैं। बेगम साहबा का मिज़ाज गरम था। इतनी ता कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो, और पति शतरंज खेलता रहे चेहरा सुर्ख़ हो गया। लौंडी से कहा—जाकर कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायँगी। मिर्ज़ाजी बड़ी दिलचस्प बाज़ी खेल रहे थे; दो ही किश्तों में मीरसाहब को मात हुई जाती थी। झुञ्झलाकर बोले—क्या ऐसा दम लबों पर है? ज़रा सब्र नहीं होता?

मीर—अरे तो जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाज़ुक-मिज़ाज होती ही हैं।

मिर्ज़ा—जी हां, चला क्यों न जाऊँ! दो किश्तों में आप को मात होती है।

मीर—जनाब, इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आप के मुहरे धरे रहें, और मात हो जाय; पर जाइए, सुन आइए। क्यों ख्वाहमख्वाह उनका दिल दुखाइएगा?

मिर्ज़ा—इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मैं खेलूंगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिर्ज़ा—अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर दर्द ख़ाक है; मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर—कुछ ही हो, उनकी खातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिर्ज़ा—अच्छा, एक चाल और चल लूँ।

मीर—हर्गिज़ नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ न लगाऊँगा।

मिर्ज़ा साहब लाचार होकर अन्दर गए, तो बेगम साहबा ने

त्योरियां बदलकर, लेकिन कराहते हुए, कहा—तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है ! चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नहीं लेते ! .खुदा न करे, कोई तुम-जैसा आदमी हो !

मिर्ज़ा—क्या कहूँ, मीरसाहब मानते ही न थे । बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाकर आया हूँ ।

बेगम—क्या जैसे वह .खुद निखट्टू हैं, वैसे ही सब को समझते हैं ? उनके भी तो बाल—बच्चे हैं, या सबका सफ़ाया कर डाला ?

मिर्ज़ा—बड़ा लती आदमी है, जब आ जाता है, तब मजबूर होकर मुझे भी खेलना ही पड़ता है ।

बेगम—दुतकार क्यों नहीं देते ?

मिर्ज़ा—बराबर के आदमी हैं, उम्र में, दर्जे में, मुझ से दो अंगुल ऊँचे । लिहाज़ करना ही पड़ता है ।

बेगम—तो मैं ही दुतकारे देती हूँ । नाराज़ हो जायंगे, हो जायँ। कौन किसी की रोटियां चला देता है । रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी । हिरिया, जा, बाहर से शतरंज उठा ला । मीर साहब से कहना, मियाँ अब नहीं खेलेंगे, आप तशरीफ़ ले जाइए ।

मिर्ज़ा—हां-हां, कहीं ऐसा ग़ज़ब भी न करना ! अपमानित करना चाहती हो क्या ! ठहर हिरिया, कहाँ जाती है ?

बेगम—जाने क्यों नहीं देते ? मेरा ही .खून पिए, जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको, तो जानूं !

यह कह कर बेगम साहबा झल्लाई हुई दीवानखाने की तरफ़ चलीं । मिर्ज़ा बेचारे का रंग उड़ गया । बीबी की मिन्नतें करने लगे—.खुदा के लिए, तुम्हें हज़रत हुसेन की क़सम । मेरी ही लाश देखे, जो उधर जाय; लेकिन बेगम ने एक न मानी । दीवान खाने के द्वार तक गईं; पर एका-एक परपुरुष के सामने जाते हुए पाँव बंध-से गए । भीतर झाँका । संयोग से कमरा खाली था । मीर साहब ने दो-एक मुहरे इधर कर दिए थे और अपनी सफ़ाई जताने के लिये बाहर

ह्ल रहे थे। फिर क्या था, वेगम ने अन्दर पहुँचकर वाज़ी उलट दी;
हरे कुछ तख्त के नीचे फेंक दिए, कुछ वाहर, और किवाड़ अन्दर से
न्द करके कुंडी लगा दी। मीर साहव दरवाज़े पर तो थे ही,
हरे वाहर फैंके जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में
ड़ी। फिर दरवाज़ा बन्द हुआ, तो समझ गए वेगम साहवा
बगड़ गईं। चुपके से घर की राह ली!

मिर्ज़ा ने कहा—तुमने ग़ज़व किया!

बेगम—अव मीर साहव इधर आए, तो खड़े-खड़े निकलवा दूंगी
तनी लगन खुदा से लगाते तो क्या ग़रीव हो जाते! आप तो शतरंज
खेलें, और मैं यहां चूल्हे-चक्की की फ़िक्र में सिर खपाऊं! लो,
ाते हो हकीम साहव के यहां, कि अव भी कसर है?

मिर्ज़ा घर से निकले, तो हकीम के घर जाने के वदले मीर
साहव के घर पहुंचे और सारा वृत्तान्त कहा। मीर साहव वोले—मैंने
तो जव मुहरे वाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फ़ौरन भागा। बड़ी
क्रोधी मालूम होती हैं, मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रक्खा है।
यह उचित नहीं। उन्हें इससे क्या मतलव कि आप वाहर क्या
करते हैं। घर का इंतज़ाम करना उनका काम है, दूसरी वातों से उन्हें
क्या सम्वन्ध?

मिर्ज़ा—ख़ैर, यह तो वताइए, अव कहाँ जमाव होगा?

मीर—इसका क्या ग़म? इतना वड़ा घर पड़ा हुआ है। वस, यहीं
जमे।

मिर्ज़ा—लेकिन वेगम साहवा को कैसे मनाऊँगा। जव घर पर
बैठा रहता था, तव तो वह इतना विगड़ती थीं। यहाँ वैठक होगी, तो
शायद ज़िन्दा न छोड़ेंगी।

मीर—अजी, वकने भी दीजिए, दो-चार रोज़ में आप ही
ठीक हो जायंगी। हां, आप इतना कीजिए कि आज से ज़रा तन
जाइए।

२

मीर साहब की बेगम अपने आलसी स्वभाव के कारण कोई काम करना पसन्द न करती थीं । इसलिए वह अपने पति के शतरंज की कभी आलोचना न करतीं । इन कारणों से मीर साहब को विश्वास हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यन्त विनयशील और गंभीर है, लेकिन जब दीवान खाने में बिसात बिछने लगी. और मीर साहब दिन-भर घर में रहने लगे, तो उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा । उन्हें अब काम करना पड़ता था ।

उधर नौकरों में भी काना-फूसी होने लगी । अब तक दिन-भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे । घर में चाहे कोई आवे, चाहे कोई जाय, उनसे कुछ मतलब न था ! आठों पहर की धौंस हो गई। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का । और हुक्का तो किसी विरही के हृदय की भांति नित्य जलता ही रहता था । वे बेगम साहबा से जा—जाकर कहते-हुजूर, मियां की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई दिन-भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गए। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे, तो शाम ही कर दी ! घड़ी-आध—घड़ी दिल बहलाव के लिये खेल लेना बहुत है । खैर हमें तो कोई शिकायत नहीं, हुज़ूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लावेंगे, मगर यह खेल मनहूस है । इसका खेलने वाला कभी पनपता नहीं, घर पर कोई-न-कोई आफ़त जरूर आती है । यहां तक कि एक के पीछे महल्ले-के महल्ले तबाह होते देखे गए हैं। सारे महल्ले में यही चर्चा होती रहती है । हुज़ूर का नमक खाते हैं, अपने मालिक की बुराई सुन सुन कर रंज होता है, मगर क्या करें । इस पर बेगम साहबा कहतीं— मैं तो स्वयं इसको पसन्द नहीं करती, पर वह किसी की सुनते ही नहीं, तो क्या किया जाय ?

महल्ले में भी जो दो-चार पुराने ज़माने के लोग थे, वे आपस में भांति—भांति के अमंगल की कल्पनाएं करने लगे—अब खैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का ख़ुदा ही

नक है। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी । आसार
रे हैं ।

राज्य में हा-हा-कार मचा हुआ था । प्रजा दिन दिहाड़े लूटी जाती थी । कोई फ़रियाद सुननेवाला न था । देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची चली आती थी और वह विलासों में, भांड़ों में और विलासता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी । अंगरेज़ कम्पनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था । कमली दिन-दिन भीगकर भारी होती जाती थी । देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था । रेज़ीडेंट बार-बार चेतावनी देता था; पर यहां तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे; किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

ख़ैर, मीर साहब के दीवानख़ाने में शतरज होते कई महीने गुज़र गए । नए-नए नक़्शे हल किए जाते, नए-नए क़िले बनाए जाते, नित नई व्यूह-रचना होती; कभी-कभी खेलते-खेलते झौड़ हो ज़ाती, तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती; पर शीघ्र ही दोनों मित्रों में मेल हो जाता । कभी-कभी ऐसा भी होता, कि बाज़ी उठा दी जाती; मिर्ज़ाजी रूठकर अपने घर चले आते, मीर साहब अपने घर में जा बैठते; पर रात भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शान्त हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानख़ाने में आ पहुँच थे ।

एक दिन दोनों मित्र बैठे शतरंज की दलदल में ग़ोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार, बादशाही फ़ौज का अफ़सर, मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा । मीर साहब के होश उड़ गए ! यह क्या बला सिर पर आई । यह तलबी किस लिये हुई ! अब ख़ैरियत नहीं नज़र आती । घर के दरवाज़े बंद कर लिए ! नौकरों से बोले—कह दो, घर में नहीं हैं ।

सवार—घर में नहीं, तो कहाँ हैं ?

नौकर—यह मैं नहीं जानता । क्या काम है ?

सवार—काम तुझे क्या बतलाऊँ ? हुज़ूर ने बुलाया है—शायद फ़ौज के लिये कुछ सिपाही मांगे गये हैं । जागीरदार हैं कि दिल्लगी !

मोरचे पर जाना पड़ेगा तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा!

नौकर—अच्छा, तो जाइए, कह दिया जायगा।

सवार—कहने की बात नहीं है। मैं कल ख़ुद आऊँगा। स
ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा कांप उठी। मिर्ज़ा
जी से बोले—कहिए जनाब, अब क्या होगा?

मिर्ज़ा—बड़ी मुसीबत है, कहीं मेरी भी तलबी न हो।

मीर—कमबख्त कल फिर आने को कह गया है!

मिर्ज़ा—आफ़त है, और क्या! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा, तो
बेमौत मरे।

मीर—बस, यही एक उपाय है कि घर पर मिलो ही नहीं।
कल से गोमती पर कहीं वीराने में नक्शा जमे। वहां किसे ख़बर
होगी? हज़रत आकर लौट जायँगे।

मिर्ज़ा—वल्लाह, आपको ख़ूब सूझी! इसके सिवा और कोई
उपाय ही नहीं है।

इधर मीर साहब के नौकर उस सवार से कह रहे थे—'तुमने
ख़ूब धता बताई।' उसने जवाब दिया—ऐसे आलसियों को तो
चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरंज
ने चरा ली। अब भूलकर भी घर पर न रहेंगे।

३

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह-अँधेरे घर से निकल खड़े होते।
बग़ल में एक छोटी-सी दरी दबाए, डिब्बे में गिलौरियाँ भरे, गोमती-
पार एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब
आसिफ़उद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तम्बाकू, चिलम और
मदरिया ले लेते और मसजिद में पहुंच, दरी बिछा, हुक्का भरकर
शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन-दुनियां की फ़िक्र न
रहती थी। 'किश्त', 'शह' आदि दो-एक शब्दों के सिवा उनके मुँह
से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में

इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूख मालूम होती, तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते और एक चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम-क्षेत्र में डट जाते। कभी-कभी तो उन्हें भोजन का भी खयाल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कम्पनी की फ़ौजें लखनऊ की तरफ़ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को ले-लेकर देहातों में भाग रहे थे; पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इस की ज़रा भी फ़िक्र न थी। वे र से आते, तो गलियों में होकर। डर था कि कहीं किसी र्मचारी की निगाह न पड़ जाय, जो बेगार में पकड़े जायँ। हज़ारों पये सालाना की जागीर मुफ़्त में ही हज़म करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खँडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मिर्ज़ा की बाज़ी कुछ कमज़ोर थी। मीर साहब उन्हें किश्त-पर-किश्त दे रहे थे। इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिए। यह गोरों की फ़ौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिये आ रही थी।

मीर साहब बोले—अंगरेज़ी फ़ौज आ रही है; ख़ुदा ख़ैर करे।

मिर्ज़ा—आने दीजिए, किश्त बचाइए। लो यह किश्त!

मीर—ज़रा देखना चाहिए—यहीं आड़ में खड़े हो जायं।

मिर्ज़ा—देख लीजिएगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त!

मीर—तोपख़ाना भी है। कोई पांच हज़ार आदमी होंगे। कैसे जवान हैं! कितने लाल-लाल मुंह हैं! सूरत देखकर डर मालूम होता है।

मिर्ज़ा—जनाब, बहाने न कीजिए। यह चकमे किसी और को दीजिएगा—यह किश्त!

मीर—आप भी अजीब आदमी हैं। यहां तो शहर पर आफ़त आई हुई है और आपको किश्त सूझी है! कुछ इसकी भी ख़बर है कि शहर घिर गया तो घर कैसे चलेंगे?

मिर्ज़ा—जब घर चलने का वक्त आयेगा, तब देखी जाय यह किश्त, बस अबकी शह में मात है।

फ़ौज निकल गई। दस बजे का समय था, फिर बाज़ी बिछ

मिर्ज़ा बोले—आज खाने की कैसी ठहरेगी ?

मीर—अजी, आज तो रोज़ा है। क्या आपको ज़्यादा मालूम होती है ?

मिर्ज़ा—जी नहीं शहर में न-जाने क्या हो रहा होगा।

मीर—शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-ख आराम से सो रहे होंगे। हुज़ूर नवाब साहब भी आरामगाह में हों

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे तो तीन बज गए। अ मिर्ज़ा जी की बाज़ी कमज़ोर थी। चार का घण्टा बज रहा था फ़ौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली पकड़ लि गए थे और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिए जा रही थ शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी ख़ून न गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इत शान्ति से, इस तरह ख़ून बहे बिना, न हुई होगी।

मिर्ज़ा ने कहा—हुज़ूर नवाब साहब क़ैद कर लिये गए हैं।

मीर—होगा, यह लीजिए शह !

मिर्ज़ा—जनाब ज़रा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत न लगती। बेचारे नवाब साहब इस वक्त ख़ून के आंसू रो रहे होंगे।

मीर—रोना ही चाहिए। यह आराम वहां कहां नसीब होगा- यह किश्त !

मिर्ज़ा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दना हालत है !

मीर—हां, सो तो है ही—यह लो, फिर किश्त ! बस, अब कि किश्त में मात है, बच नहीं सकते।

मिर्ज़ा—ख़ुदा की क़सम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतनी बड़ी घटन कर भी आपको दुःख नहीं होता। हाय, ग़रीब वाजिदअली शाह!

मीर—पहले अपने बादशाह को तो बचाइए, फिर नवाब साहब का मातम कीजिएगा। यह किश्त और मात। लाना हाथ।

बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिर्ज़ा ने फिर बाज़ी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—आइए, नवाब साहब के मातम में एक मरसिया कह डालें; लेकिन मिर्ज़ा जी की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी, वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे।

४

शाम हो गई। खंडहर में चमगादड़ों ने चीख़ना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोंसलों में चिमटीं, पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो ख़ून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। मिर्ज़ाजी तीन बाज़ियां लगातार हार चुके थे, इस चौथी बाज़ी का रंग भी अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़ निश्चय करके संभलकर खेलते थे, लेकिन एक-न-एक चाल ऐसी बेढब आ पड़ती थी, जिससे बाज़ी ख़राब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और उग्र होती जाती थी; उधर मीर साहब मारे उमंग के ग़ज़लें गाते थे, चुटकियां लेते थे; मानो कोई गुप्त धन पा गए हों। मिर्ज़ा जी सुन-सुनकर झुंझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे, पर ज्यों ज्यों बाज़ी कमज़ोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकलता जाता था। यहां तक कि वह बात-बात पर झुंझलाने लगे—जनाब, आप चाल न बदला कीजिए। यह क्या कि एक चाल चले, और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो, एक बार चल लीजिए। यह आप मुहरे पर ही हाथ क्यों रक्खे रहते हैं? मुहरे को छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छुइए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे में चलते हैं, इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पांच मिनट से ज़्यादा लगे, उसको मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली! चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिए।

मीर साहब का फ़रज़ी पिटता था। बोले—मैंने चाल चली ही कब थी?

आप की प्रतिभा अलौकिक और सर्वतोमुखी थी। साहित्य के कई क्षेत्रों में अच्छी ख्याति पाई—कविता-क्षेत्र में आप मुख्य रहस्यवादी कवि और अतुकान्त कविता के जन्मदाता ठहरे, नाटकों में भी आप अग्रसर माने गए और गल्प तथा उपन्यास लिखकर आपने अच्छी प्रतिष्ठा पाई। प्राचीन भारत के इतिहास का जैसा गम्भीर अध्ययन आपने किया था, संभवतः किसी ने ही किया होगा। आप के ऐतिहासिक नाटक प्राचीन भारत के यथार्थ परन्तु सुन्दर चित्र हैं। आप उच्चकोटि के कलाकार थे।

आप की रचनायें ये हैं –

गल्पसंग्रह्—आकाशदीप, आंधी, प्रतिध्वनि, छाया।

उपन्यास— तितली, कंकाल।

कविता—प्रेमपथिक, कामायनी, काननकुसुम, महाराणा का महत्व।

नाटक—अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त जन्मेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री; वरुणालय, कामना, विशाख, प्रायश्चित्त, एक घूंट।

'प्रसाद' जी की सभी कृतियां भावप्रधान होती हैं।

आप की कहानियां प्रायः छोटी होती हैं। उनकी एक विशेषता यह भी है कि उन में जीवन की किसी एक घटना को पूर्णतया अंकित किया जाता है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जहां भी उस का अन्त हो, वहीं समाप्त किया जाता है। आगे क्या हुआ, इसे पाठक के सुलझाने के लिए छोड़ दिया जाता है।

आप कहीं कहीं संस्कृत शब्दों और समस्त पदों का प्रयोग करते हैं, इससे भाषा क्लिष्ट और दुर्गम हो जाती है।

बेड़ी

"बाबू जी, एक पैसा!"

मैं सुन कर चौंक पड़ा, कितनी कारुणिक आवाज़ थी! देखा तो एक ९-१० बरस का लड़का अन्धे की लाठी पकड़े खड़ा था। मैंने कहा—सूरदास, यह तुम को कहां से मिल गया?

अन्धे को अन्धा न कह कर सूरदास के नाम से पुकारने की चाल मुझे भली लगी। इस सम्बोधन में उस दीन के अभाव की ओर सहानुभूति और सम्मान की भावना थी, व्यंग्य न था।

उसने कहा—बाबू जी यह मेरा लड़का है, मुझ अन्धे की लकड़ी है। इसके रहने से पेट-भर खाने को मांग सकता हूँ और दबने-कुचलने से भी बच जाता हूँ।

मैंने उसे इकन्नी दी, बालक ने उत्साह से कहा— अहा इकन्नी! बुड्ढे ने कहा - दाता जुग-जुग जियो!

मैं आगे बढ़ा और सोचता जाता था, इतने कष्ट से जो जीवन बिता रहा है उसके विचार में भी जीवन ही सबसे अमूल्य वस्तु है, हे भगवान्!

"दीनानाथ करी क्यों देरी ?"—दशाश्वमेध की ओर जाते हुए मेरे कानों में एक प्रौढ़ स्वर सुनाई पड़ा। उसमें सच्ची विनय थी—वही जो तुलसीदास की विनय-पत्रिका में ओत-प्रोत है। वही आकुलता, सान्निध्य की पुकार; प्रबल प्रहार से व्यथित की कराह। मोटर की दम्भभरी भीषण भों-भों में विलीन होकर भी वह वायुमण्डल में तिरने लगी। मैं अवाक् होकर देखने लगा। वही बुड्ढा; किन्तु आज अकेला था। मैंने उसे कुछ देते हुए पूछा— क्यों जी आज तुम्हारा लड़का कहां है?

"बाबू जी, भीख में से कुछ पैसे चुरा कर रखता, था, वही लेकर भाग गया, न जाने कहां गया!"—उन फूटी आँखों से पानी बहने लगा। मैंने पूछा—उसका पता नहीं लगा? कितने दिन हुए?

"लोग कहते हैं कि वह कलकत्ता भाग गया"— उस नटखट लड़के पर क्रोध से भरा हुआ मैं घाट की ओर बढ़ा, वहां एक व्यास जी श्रवण-चरित की कथा कह रहे थे। मैं सुनते-सुनते उस बालक पर अधिक उत्तेजित हो उठा। देखा तो पानी की कल का धुँआं पूर्व के आकाश में अजगर की तरह फैल रहा था।

कई महीने बीतने पर चौक में वही बुड्ढा फिर दिखाई पड़ा, उसकी लाठी पकड़े वही लड़का अकड़ा हुआ खड़ा था। मैंने क्रोध से पूछा—'क्यों बे, तू अन्धे पिता को छोड़ कर कहाँ भागा था? वह मुस्कराता हुआ बोला—"बाबू जी, नौकरी खोजने गये थे।" मेरा क्रोध उसकी कर्त्तव्य-बुद्धि से शान्त हुआ। मैंने उसे कुछ देते ह

कहा— 'लड़के तेरी यही नौकरी है, तू अपने बाप को छोड़ कर भागा कर।"

बुड्ढा बोल उठा—"बाबू जी, अब यह नहीं भाग सकेगा, इसके पैरों में बेड़ी डाल दी गई है।" मैंने घृणा और आश्चर्य से देखा, सचमुच उसके पैरों में बेड़ी थी। बालक बहुत धीरे-धीरे चल सकता था। मैंने मन-ही मन कहा—हे भगवन्! भीख मँगवाने के लिये, पेट के लिये बाप अपने बेटे के पैर में बेड़ी भी डाल सकता है और वह नट-खट फिर भी मुस्कराता था। संसार, तेरी जय हो!

मैं आगे बढ़ गया।

मैं एक सज्जन की प्रतीक्षा में खड़ा था। आज नाव पर घूमने का उनसे निश्चय हो चुका था। गाड़ी, मोटर, तांगे टकराते-टकराते भागे जा रहे थे, सब जैसे व्याकुल। मैं दार्शनिक की तरह उनकी चंचलता की आलोचना कर रहा था। सिरसै के वृक्ष की आड़ में फिर वही कण्ठस्वर सुनाई पड़ा। बुड्ढे ने कहा—"बेटा, तीन दिन और न ले पैसा, मैंने रामदास से कहा है सात आने में तेरा कुरता बन जायगा। अब ठण्ड पड़ने लगी है।" उसने ठुनकते हुए कहा—"नहीं, आज मुझे पैसा दो, मैं कचालू खाऊंगा। वह देखो उस पटरी पर बिक रहा है।" बालक के मुँह और आंख में पानी भरा था। दुर्भाग्य से बुड्ढा उसे पैसा नहीं दे सकता था। वह न देने के लिए हठ करता ही रहा, परन्तु बालक की ही विजय हुई। पैसा लेकर सड़क की उस पटरी पर चला। उस के बेड़ी से जकड़े हुए पैर पैंतरा काट कर चल रहे थे-जैसे युद्ध-विजय के लिये।

नवीन बाबू ४० मील की स्पीड से मोटर अपने हाथ से दौड़ा रहे थे। दर्शकों की चीत्कार से बालक गिर पड़ा, भीड़ दौड़ी, मोटर निकल गई और वह बुड्ढा विकल हो रोने लगा—अन्धा किधर जाय!

एक ने कहा—चोट अधिक नहीं।

दूसरे ने कहा—हत्यारे ने बेड़ी पहना दी है नहीं तो क्यों चोट

बुड्ढे ने कहा—काट दो पेड़ी बाबा, मुझे न चाहिये।
और मैंने हतबुद्धि होकर देखा कि बालक के प्राण-पँखेरू उ...
...ड़ी काट चुके थे!

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक

(जन्म—सन् १८८९)

"कौशिक' जी कानपुर के निवासी हैं। आप को बंगला और अंग्रेजी साहि... ...का अच्छा ज्ञान है। आप फ़ारसी भी जानते हैं। साहित्य-सेवा ही आप के जीव... ...का मुख्य उद्देश्य है। अब तक आप लगभग ३०० कहानियां लिख चुके हैं। आप उपन्यासकार भी हैं और रंगमंच का भी अनुभव रखते हैं। ललित कलाओं ...भी आप का प्रेम है। कानपुर की साहित्य-मंडली में आप को अच्छी प्रतिष्ठा ...प्त है।

आप की प्रमुख रचनाएं ये हैं—

गल्प संग्रह—मणिमाला, चित्रशाला (२ भाग)।
उपन्यास—मां, भिखारिणी।
नाटक—भीष्म।

गृहस्थ-जीवन के चित्र अंकित करने में जो सफलता आप को प्राप्त है, वह कदाचित् ही किसी दूसरे गल्पकार को हुई होगी। आप की कहानियां कथोपकथन के कारण सजीव, स्वाभाविक और मनोरंजक हो गई हैं। आप की भाषा पात्रों के अनुरूप होती है

ताई

(१)

"ताऊजी हमें लेलगाली (रेलगाड़ी) ला दोगे?"—कहता हुआ ...एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बांहें फैलाकर कहा—"हां बेटा, ला ...गे।"

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने

कहा— 'लड़के तेरी यही नौकरी है, तू अपने बाप को छोड़ कर न भागा कर।"

बुड्ढा बोल उठा—"बाबू जी, अब यह नहीं भाग सकेगा, इसके पैरों में बेड़ी डाल दी गई है।" मैंने घृणा और आश्चर्य से देखा, सचमुच उसके पैरों में बेड़ी थी। बालक बहुत धीरे-धीरे चल सकता था। मैंने मन-ही मन कहा—हे भगवन्! भीख मँगवाने के लिये, पेट के लिये बाप अपने बेटे के पैर में बेड़ी भी डाल सकता है और वह नट-खट फिर भी मुस्कराता था। संसार, तेरी जय हो!

मैं आगे बढ़ गया।

मैं एक सज्जन की प्रतीक्षा में खड़ा था। आज नाव पर घूमने का उनसे निश्चय हो चुका था। गाड़ी, मोटर, तांगे टकराते-टकराते भागे जा रहे थे, सब जैसे व्याकुल। मैं दार्शनिक की तरह उनकी चंचलता की आलोचना कर रहा था। सिरसै के वृक्ष की आड़ में फिर वही कण्ठस्वर सुनाई पड़ा। बुड्ढे ने कहा—"बेटा, तीन दिन और न ले पैसा, मैंने रामदास से कहा है सात आने में तेरा कुरता बन जायगा। अब ठण्ड पड़ने लगी है।" उसने ठुनकते हुए कहा—"नहीं, आज मुझे पैसा दो, मैं कचालू खाऊंगा। वह देखो उस पटरी पर बिक रहा है।" बालक के मुँह और आंख में पानी भरा था। दुर्भाग्य से बुड्ढा उसे पैसा नहीं दे सकता था। वह न देने के लिए हठ करता ही रहा, परन्तु बालक की ही विजय हुई। पैसा लेकर सड़क की उस पटरी पर चला। उस के बेड़ी से जकड़े हुए पैर पैंतरा काट कर चल रहे थे-जैसे युद्ध-विजय के लिये।

नवीन बाबू ४० मील की स्पीड से मोटर अपने हाथ से दौड़ा रहे थे। दर्शकों की चीत्कार से बालक गिर पड़ा, भीड़ दौड़ी, मोटर निकल गई और वह बुड्ढा विकल हो रोने लगा—अन्धा किधर जाय!

एक ने कहा—चोट अधिक नहीं।

दूसरे ने कहा—हत्यारे ने बेड़ी पहना दी है नहीं तो क्यों चोट

बुड्ढे ने कहा—काट दो बेड़ी बाबा, मुझे न चाहिये।

और मैंने हतबुद्धि होकर देखा कि बालक के प्राण-पँखेरू अपनी बेड़ी काट चुके थे!

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक

(जन्म—सन् १८८९)

"कौशिक' जी कानपुर के निवासी हैं। आप को बंगला और अंग्रेजी साहित्य का अच्छा ज्ञान है। आप फ़ारसी भी जानते हैं। साहित्य-सेवा ही आप के जीवन का मुख्य उद्देश्य है। अब तक आप लगभग ३०० कहानियां लिख चुके हैं। आप उपन्यासकार भी हैं और रंगमंच का भी अनुभव रखते हैं। ललित कलाओं से भी आप का प्रेम है। कानपुर की साहित्य-मंडली में आप को अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त है।

आप की प्रमुख रचनाएं ये हैं—

गल्प संग्रह—मणिमाला, चित्रशाला (२ भाग)।

उपन्यास—मां, भिखारिणी।

नाटक—भीष्म।

गृहस्थ-जीवन के चित्र अंकित करने में जो सफलता आप को प्राप्त है, वह कदाचित् ही किसी दूसरे गल्पकार को हुई होगी। आप की कहानियां कथोपकथन के कारण सजीव, स्वाभाविक और मनोरंजक हो गई हैं। आप की भाषा पात्रों के अनुरूप होती है

ताई

(१)

"ताऊजी हमें लेलगाली (रेलगाड़ी) ला दोगे?"—कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बांहें फैलाकर कहा—"हां बेटा, ला देंगे।"

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने

बालक को गोद में उठा लिया, और उसका मुख चूमकर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी ?"

बालक बोला—"उस में बैठ के बली दूल जायंगे। हम जायँगे, चुन्नी को भी ले जायंगे। बाबूजी को नहीं ले जायँगे। हमें लेलगाली नहीं ला देते। ताऊजी, तुम ला दोगे. तुम्हें ले जायँगे।"

बाबू 'और किसे ले जायगा ?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बछ, औल किछी को नहीं ले जायंगे ?

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं ले जायगा ?'

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताई जी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठीं थी। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला— 'ताई को नहीं ले जायंगे।"

ताई सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊजी ही को ले जा! मेरे ऊपर दया रख!"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—'ताई को क्यों नहीं ले जायगा ?"

बालक—" ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं करतीं।"

बाबू—"जो प्यार करें तो ले जायगा ?"

बालक को इसमें कुछ संदेह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—'क्यों रे, बोलता नही ? ताई प्यार करें तो रेल पर बिठाकर ले जायगा ?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिला-कर

बालक को गोद में उठा लिया, और उसका मुख चूमकर बोले—"व
करेगा रेलगाड़ी ?"

बालक बोला—"उस में बैठ के बली दूल जायंगे। हम जायँ
चुन्नी को भी ले जायंगे। बाबूजी को नहीं ले जायँगे। हमें लेलगा
नहीं ला देते। ताऊजी, तुम ला दोगे. तुम्हें ले जायँगे।"

बाबू 'और किसे ले जायगा ?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बछ, औल किछी को नहीं
जायंगे ?

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगिनी बैठी थीं। बाबू सा
ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं
जायगा ?'

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा
ताई जी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठीं थी। बालक को उनके मु
का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—'ताई को नहीं
जायंगे।"

ताई सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊजी ही को ले जा
मेरे ऊपर दया रख !"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई
शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—'ता
को क्यों नहीं ले जायगा ?"

बालक—" ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं करतीं।"

बाबू—'जो प्यार करें तो ले जायगा ?"

बालक को इसमें कुछ संदेह था। ताई का भाव देखक
उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौ
रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—'क्यों रे, बोलता नही ? ताई प्या
करें तो रेल पर बिठाकर ले जायगा ?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिला-क

बाबू—"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा
हो प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न-जाने किस धातु
बना हुआ है !"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी
मगर वैसा बच्चा भी तो हो ! पराए धन से भी कहीं घर भरता है।

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—यदि अपना सगा
भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि
धन किसे कहेंगे।"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं—"बातें बनाना बहुत
है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बातें
नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं ! नहीं तो ये दिन काहे को
पड़ते ! तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी संतान
लिए न-जाने क्या क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं
पर तुम्हें इन बातों से क्या काम ? रात-दिन भाई भतीजों में मगन
हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया।
कहा—"पूजा-पाठ, सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं,
पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।

श्रीमतीजी कुछ-कुछ रुआसे स्वर में बोलीं—"इसी विश्वास ने
सब चौपट कर रक्खा है ! ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जाँय, तो
कैसे चले। सब विश्वास पर ही बैठे रहें, आदमी काहे को किसी
के लिए चेष्टा करे।"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं
अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गए।

(२)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम
हैं। लेन-देन भी है, इनके एक छोटा भाई हैं। उसका का नाम
कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही घर में हैं। बाबू रामजीदा

बाबू साहब हँसकर बोले—"तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री भी...... क्या कहूं, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया-भर के झूठे और धूर्त हैं। ये झूठ बोलने की रोटियाँ खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनककर बोली—"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई देता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पंडित कुछ अपनी तरफ़ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं। अँगरेज़ी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादा के ज़माने से चली आई हैं, उन्हें झूठा बनाते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात समझती नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। संभव है वह सच्चा हो। परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—"हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो! अच्छा, एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में संतान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसके हृदय में संतान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु किया क्या जाय? जब नहीं है, और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिंता करने से क्या लाभ? इसके सिवा, जो बात अपनी संतान से होती, वही भाई की संतान से भी हो रही है; जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है; जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिंता क्यों की जाय।'

रामेश्वरी कुढ़कर बोलीं—"तुम्हारी समझ को क्या कहूं। इसी

समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही ... क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी सुन्दर क्यों न... उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता,... लिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही... हो, काम में न आनेवाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य को ... होता है, इसलिए कि वह अपनी चीज़ है। कभी-कभी ऐसा भी होता... कि मनुष्य पराई चीज़ से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी... तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बनाकर नहीं छोड़ता, अथवा... हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब... उसे संतोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, और प्रेम... ममत्व। इन दोनों का साथ चोली दामन का-सा है। ये कभी ... नहीं किए जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं... था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी यो... रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अंतर्निहित थे... एक माता के हृदय में होते हैं; परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था... उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ... पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके... के ऊपर लानेवाला कोई नहीं। इसीलिए उनका हृदय उन बच्चों... ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये... मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न... था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की... और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थीं कि उनके प... उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा... थी। पास ही उनकी देवरानी भी बैठी थीं। दोनों बच्चे छत... दौड़-दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूद... बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल... की तरह खिले हुए उनके नन्हे-नन्हे मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली...

भी बढ़ गया। उनकी कमज़ोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसी लिए मैं कहता हूँ कि अपनी संतान लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो ये ही अपनी संतान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से ... कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितांत शुद्ध हृदय से कही थी; ... रामेश्वरी को इसमें व्यंग्य की तीक्ष्ण गंध मालूम हुई। उन्होंने ... मन में कहा—इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायँ, पाप कटे! आठ पहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही ... है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है, छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्हीं को मुबारक रहे! निगोड़े आप ही आ-आके ... हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना बोलना ही पड़ता है। अभी परसों ज़रा यों ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं, न यों चैन, न वों चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न-जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी, मेरे आते ही गिरगट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती हैं। न-जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा, पर इतना याद रक्खो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा! तुमसे मुझे ... कहीं अधिक प्यारे हैं।"

मंगा दो।' रामेश्वरी ने झिड़क कर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।'

मनोहर कुछ अप्रतिम होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यंत करुण-स्वर में कहा—"ताई, पतंग मंगा दो; हम भी उड़ावेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ ... गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी सांस लेकर मन-ही-मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो आज मुझसे बढ़कर भागवान् स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़-मारा कितना सुन्दर है और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है—यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लें।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला—"तुम हमें पतंग नहीं मंगवा दोगी, तो ताऊजी से कहकर तुम्हें पिटवावेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़क कर बोलीं—'जा, कह दे अपने ताऊजी से। देखूँ वह मेरा क्या कर लेंगे।"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया और फिर स्तृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतङ्गों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊजी के दुलार का फल है कि बालिश्त-भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से पतंग कटकर उसी छत की ओर आई और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ...र दीवारी थी। जहां रामेश्वरी खड़ी हुई थी, केवल वहीं पर ...र था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस

मनोहर की टाँग ऊखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है ?"

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है !"

रामेश्वरी—"उसे मेरे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई। और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

अशिक्षित का हृदय

१

बूढ़ा मनोहरसिंह विनीत भाव से बोला—"सरकार, अभी तो मेरे पास रुपए हैं नहीं; होते तो दे देता। ऋण का पाप तो देने से ही कटेगा। फिर, आपके रुपए को कोई जोखिम नहीं। मेरा नीम का पेड़ गिरवी धरा हुआ है। वह पेड़ कुछ न होगा, तो पचीस-तीस रुपए का होगा। इतना पुराना पेड़ गाँव भर में दूसरा नहीं।"

ठाकुर शिवपालसिंह बोले "डेढ़ साल का व्याज मिलाकर कुल २५) होते हैं। यह रूपया अदा करदो, नहीं तो हम तुम्हारा पेड़ कटवा लेंगे।"

मनोहरसिंह कुछ घबराकर बोला—"अरे सरकार ऐसा अंधेर न कीजिएगा, पेड़ न कटवाइएगा। रुपया मैं दे ही दूँगा, यदि न भी दे सकुँ, तो पेड़ आपका हो जायगा। पर मेरे ऊपर इतनी दया कीजिएगा कि उसे कटवाइएगा नहीं।"

ठाकुर शिवपालसिंह मुस्कराकर बोले—"मनोहर, तुम सठिया गए

कुछ दौड़-धूप की, दो-चार आदमियों से क़र्ज़ मांगा; पर किसी ने उसे रुपये न दिये। लोगों ने सोचा, वृद्ध आदमी है, न जाने कब दुलक जाय। ऐसी दशा में रुपया किससे वसूल होगा? मनोहर चारों ओर से हताश होकर बैठ रहा, और धड़कते हुए हृदय से सप्ताह व्यतीत होने की राह देखने लगा।

दोपहर का समय है। मनोहरसिंह एक चारपाई पर नीम के नीचे लेटा हुआ है। नीम की शीतल वायु के झोंकों से उसे बड़ा सुख मिल रहा है। पड़ा-पड़ा सोच रहा है कि परसों तक यदि रुपये न पहुंचेंगे, तो ठाकुर साहब इस पेड़को कटवा डालेंगे। यह पेड़ मेरे पिता के हाथ का लगाया हुआ है। मुझे और मेरे परिवार को दतून और छाया देता रहा है। इसको ठाकुर साहब कटवा डालेंगे।

यह विचार मनोहरसिंह को ऐसा दुःखदायी प्रतीत हुआ कि वह चारपाई पर उठ कर बैठ गया और वृक्ष की ओर मुँह करके बोला—यदि संसार में किसी ने मेरा साथ दिया है, तो तूने। यदि संसार में किसी ने निःस्वार्थ भाव से मेरी सेवा की है तो तूने। अब भी आंखों के आगे वह दृश्य आ जाता है, जब मेरे पिता तुझे सींचा करते थे। तू उस समय बिलकुल बच्चा था। मैं तेरे लिये तालाब से पानी भरकर लाया करता था। पिता कहा करते थे—'बेटा मनोहर, यह मेरे हाथ की निशानी है। इस से जब-जब तुझे और तेरे बाल-बच्चों को सुख पहुंचेगा, तब-तब मेरी याद आवेगी।' पिता का देहांत हुए चालीस वर्ष व्यतीत हो गए। उनके कहने के अनुसार, तू सदैव उनकी कीर्ति का स्मरण कराता रहा, और जब तक रहेगा, उनकी याद दिलाता रहेगा! मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है, जब मैं अपने मित्रों सहित तेरी डालियों पर चढ़कर खेला करता था। इस समय संसार में तू ही एक मेरा पुराना मित्र है। तुझे वह दुष्ट काटना चाहता है। हां, काटेगा क्यों नहीं। देखूँ कैसे काटता है!"

इसी समय उधर से एक पंद्रह-सोलह वर्ष का लड़का निकला। वृद्ध मनोहर को बड़बड़ाते देख उसने पूछा—"चाचा किससे बातें करते हो? यहां तो कोई है भी नहीं।"

तेजा बोला—'चाचा, जाने भी दो, इन बातों में क्या रक्खा है! पेड़ कटवाने को कहते हैं, काट लेने देना। इस पेड़ में तुम्हारा रक्खा ही क्या है? पेड़ तो नित्य ही कटा करते हैं'।

मनोहरसिंह बिगड़ कर बोला—"आखिर लड़के ही हो न! अरे बेटा, यह पेड़ ऐसा-वैसा नहीं है। यह पेड़ मेरे भाई के बराबर है, मैं इसे अपना सगा भाई समझता हूँ। यह मेरे पिता के हाथ का लगाया हुआ है, किसी और के हाथ का नहीं। जब मैं तुमसे भी छोटा था, तब से इसका और मेरा साथ है। मैं बरसों इस पर खेला हूँ, बरसों इसकी मीठी-मीठी निमोलियां खाई हैं। इसकी दतून आज तक करता हूँ। गाँव में सैकड़ों पेड़ हैं पर मुझसे क़सम ले लो जो मैंने कभी उनकी पत्ती तक छुई हो। जब मेरे घर में आप ही इतना बड़ा पेड़ खड़ा हुआ है तब मुझे दूसरे पेड़ में हाथ लगाने की क्या पड़ी है। दूसरे, मुझे किसी और पेड़ की दतून अच्छी ही नहीं लगती।

तेजा बोला—"चाचा बिना रुपये दिये तो यह पेड़ बच नहीं सकता।"

मनोहर—बेटा, ईश्वर जानता है, मेरे पास रुपए होते तो मैं आज ही दे देता। पर क्या करूं, लाचार हूँ। मेरे घर में ऐसी कोई चीज़ भी नहीं जो बेच कर दे दूँ। मुझे आप इस बात का बड़ा दुःख है, गांव भर में घूम आया, किसी ने उधार न दिए। क्या करूं? बेटा तेजा, सच जानना, जो यह पेड़ कट गया, तो मुझे बड़ा दुःख होगा। मेरा बुढ़ापा बिगड़ जायगा, अभी तक मुझे कोई दुःख नहीं था। खाता था, ईश्वर-भजन करता था; पर अब घोर दुःख हो जायगा।"

यह कह कर वृद्ध मनोहरसिंह ने आँखों में आँसू भर लिये।

वृद्ध मनोहरसिंह का कष्ट देख-सुनकर बड़ा दुःखी हुआ। तेजासिंह गांव के एक प्रतिष्ठित किसान का लड़का था। उसका पिता डेढ़-दो सौ बीघे भूमि की खेती कराता था। मनोहरसिंह को तेजासिंह चाचा कहा करता था।

तेजा ने कहा—चाचा, बापू से यह हाल कहा है?"

मनोहर—"सब से कह चुका बेटा। तेरा बापू तो अब बड़ा आद

आज हम उसकी कटाई शुरू कराते हैं।"

मनोहर—आपको अधिकार है। मुझे रुपया मिलता तो देता और अब भी यदि मिल जायगा तो दे दूँगा। मेरी नीयत बेईमानी नहीं है। मैं फ़ौज में रहा हूँ, बेईमानी का नाम नहीं ...

शिवपाल—"तो अब हम उसे कटवालें न ?"

मनोहर—"यह मैं कैसे कहूँ, आपका जो जी चाहे कीजिए।

यह कह कर मनोहरसिंह उसी प्रकार अकड़ता हुआ शिवपालसिंह के सामने से चला आया और अपने पेड़ के चारपाई पर आकर बैठ गया।

दोपहर ढलने पर चार-पाँच आदमी कुल्हाड़ियाँ लेकर आते दिखाई पड़े। मनोहरसिंह झट म्यान से तलवार निकाल उट खड़ा हो गया और ललकारकर बोला—"संभल कर आगे बढ़ना जो किसी ने भी पेड़ में कुल्हाड़ी लगाई, तो उसकी और अ... जान एक कर दूंगा।"

मजदूर बुड्ढे की ललकार सुनकर और तलवार देखकर खड़े हुए।

जब शिवपालसिंह को यह बात मालूम हुई, तब पहले तो बहुत हँसे, परन्तु पीछे कुछ सोच कर उनका चेहरा क्रोध के मा... लाल हो गया। वह बोले—"इस बुड्ढे की शामत आई है। हमा... माल है; हम चाहे काटें, चाहे रक्खें, वह कौन होता है ? चलो मेरे साथ, देखूँ यह क्या करता है ?"

शिवपालसिंह मज़दूरों तथा दो लठ-बंद आदमियों को लेकर पहुँचे। उन्हें आते देख बुड्ढा फिर तलवार निकाल कर ख... हो गया।

शिवपालसिंह उसके सामने पहुँचकर बोले—"क्यों मनोहर, य... क्या बात है ?"

मनोहरसिंह बोला—"बात केवल इतनी है कि मेरे रहते इ... कोई हाथ नहीं लगा सकता। यह मैं जानता हूँ कि अब पेड़

मगर यह होने पर भी मैं इसे अपना हुआ नहीं देख सकता।"

शिवपालसिंह—"तब तुम भी इसे कटवाये बिना न मानोगे।"

मनोहरसिंह को भी क्रोध आ गया। वह बोला—"ठाकुर साहब, ये आप हमारे ठाकुर हैं, जो इस पेड़ को कटवा लें; जो मैं अपने जीते-जी तो इसे न कटने दूँगा।"

ठाकुर शिवपालसिंह अपने आदमियों से बोले—"देखते क्या हो? इस बुड्ढे को पकड़ लो और पेड़ काटना शुरू कर दो।"

ठीक उसी समय तेजासिंह दौड़ता हुआ आया और मनोहरसिंह को कुछ रुपये देकर बोला "लो—बाबा ये रुपए। अब तुम्हारा पेड़ रह गया।

मनोहरसिंह ने रुपये लेकर ठाकुर शिवपालसिंह से पूछा—"कहिये ठाकुर साहब, रुपये लेने होंगे तो हाजिर हैं। और, जो पेड़ कटवाना हो, तो आगे बढ़िये।"

ठाकुर—"रुपये अब हम नहीं ले सकते। रुपये देने की मियाद बीत गई। अब तो पेड़ कटेगा।"

मनोहरसिंह भड़ककर बोला—"ठीक है, अब मालूम हुआ कि आप केवल मुझे दुःख पहुँचाने के लिए पेड़ कटवा रहे हैं। अच्छा कटवाइए। मुझे भी देखना है, आप किस तरह पेड़ कटवाते हैं!"

इतनी ही देर में गाँव-भर में यह खबर फैल गई कि शिवपालसिंह मनोहरसिंह का पेड़ कटवाते हैं, पर मनोहरसिंह तलवार खींचे खड़ा है, किसी को पेड़ के पास नहीं आने देता। यह खबर फैलते ही गाँव-भर जमा हो गया।

गाँव के दो चार प्रतिष्ठित आदमियों ने मनोहरसिंह से पूछा—"क्या बात है मनोहरसिंह?

मनोहरसिंह सब हाल कह कर बोला—"मैं रुपए देता हूँ, ठाकुर नहीं लेते। कहते हैं, कल तक मियाद थी अब तो पेड़ कटेगा।"

शिवपालसिंह बोले—"कल तक यह रुपये दे देता, तो पेड़

हमारा कोई अधिकार न होता। अब हमारा उस पर पूरा अधि
है। हम पेड़ अवश्य कटवावेंगे।"

एक व्यक्ति बोला—"जब कल तक इसके पास रुपये नहीं
तो आज कहां से आगए ?"

शिवपालसिंह का एक आदमी बोला—"तेजा ने अभी ला
दिए हैं।"

गांव वालों के साथ तेजा का पिता भी आया था। उसने
सुनकर तेजा को पकड़ा, और कहा—"क्यों बे, तूने ही
चुराए थे ? मैंने दोपहर को पूछा तो तीन-तेरा बकने लगा था।"

इसके बाद मनोहरसिंह से कहा—"मनोहर, ये रुपये
मेरी संदूक से चुरा लाया है। ये रुपए मेरे हैं।"

मनोहर रुपए फेंक कर बोला—"तेरे हैं तो ले जा। मैंने ते
लड़के से रुपये नहीं मांगे थे।"

फिर मनोहरसिंह ने तेजा से कहा—"बेटा, तूने यह बुरा का
किया ! चोरी की ! राम-राम ! बुढ़ाप में मेरी नाक कटाने क
काम किया था। लोग समझेंगे, मैंने ही चुराने के लिए तुझ से
कहा होगा।"

तेजा बोला—"चाचा, मैं गंगा उठाकर कह सकता हूँ कि
तुमने मुझसे रुपए मांगे तक नहीं, चुराने के लिए कहना तो बड़ी
दूर की बात है।"

शिवपालसिंह ने हँसकर कहा—क्यों मनोहर अब रुपए
कहां हैं ? लाओ रुपए ही लाओ। मै रुपए लेने को तैयार हूँ।
अब या तो अभी रुपए दे दो या सामने से हट जाओ। झगड़ा
करने से कोई लाभ नहीं होगा।

मनोहरसिंह बोला—"ठाकुर साहब, इन तानों से क्या
फ़ायदा ? रुपए मेरे पास नहीं है, लेकिन पेड़ मैं कटने नहीं
दूँगा।"

शिवपालसिंह उपस्थित लोग से बोले—"आप लोग इस बात

जान एक कर देता। मैंने फ़ौज में नौकरी की है। बड़ी-बड़ी जीती हैं। यह बेचारे हैं क्या चीज़!"

श्री सुदर्शन

आप का जन्म सन् १८९६ ई० में स्यालकोट में हुआ। आप के पण्डित गुरांदित्तामल गवर्नमेण्ट प्रेस में काम करते थे। बाल्यकाल ही से आप लिखने का शौक़ था। बी० ए० की परीक्षा पास करके आपने साप्ताहिक पत्र "हिन्दोस्तान," लाहौर, के सम्पादकीय विभाग में नौकरी कर ली। समय से आप फ़िल्म् लाइन में हैं और आप की गणना इस देश के सिनेरियो लेखकों में की जाती है। आप हिंदी तथा उर्दू दोनों के सुप्रतिष्ठि गल्पकार माने जाते हैं। सुदर्शन जी धुन के पक्के हैं और ज़ाति तथा देश सुधार चाहते हैं।

प्रेमचंद जी की तरह आप भी पहले उर्दू में ही लिखते थे, १९२० हिंदी को ही अपनाने लगे हैं।

आप की प्रमुख रचनाएं ये हैं—

गल्प संग्रह—तीर्थयात्रा, सुदर्शन-सुमन, पुष्पलता, सुदर्शन-सुधा।

उपन्यास—परिवर्तन।

नाटक—अंजना, आनरेरी मैजिस्ट्रेट।

आप की कहानियों में प्रायः मध्यम श्रेणी के लोगों का वर्णन होता है। आपके पात्र कल्पित नहीं, किन्तु इसी जगत् के मनुष्य हैं। मनोभावों का चित्रण आप बहुत कुशलता से करते हैं। कहानियां प्रायः वर्णनात्मक होती हैं।

आप प्रेमचंद-स्कूल के प्रसिद्ध कहानी-लेखक हैं। उन के समान आप की कहानियां भी सलक्ष्य और शिक्षा-प्रद होती हैं।

भाषा सरल, सुगम और मुहाविरेदार है। शैली ललित, काव्यात्मक और प्रभावोत्पादक है, इसलिए इन की कहानियां बहुत ही मनोरंजक और लोकप्रिय हुई हैं।

"सुलतान की चाह खींच लायी।"

"विचित्र जानवर है। देखोगे, तो प्रसन्न हो जाओगे।"

"मैंने भी बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

"उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी।"

"कहते हैं, देखने में भी बड़ा सुन्दर है।"

"क्या कहना! जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय उसकी छवि अंकित हो जाती है।"

"बहुत दिनों से अभिलाषा थी, आज उपस्थित हो सका हूँ।"

बाबा और खड्गसिंह दोनों अस्तबल में पहुंचे। बाबा ने दिखाया घमंड से, खड्गसिंह ने घोड़ा देखा आश्चर्य से। उसने घोड़े देखे थे, परन्तु ऐसा बांका घोड़ा उसकी आंखों से कभी न था। सोचने लगा, भाग्य की बात है। ऐसा घोड़ा खड्गसिंह के होना चाहिये था। इस साधु को ऐसी चीजों से क्या लाभ? कुछ तक आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा। इसके बाद हृदय में हलचल लगी। बालकों की-सी अधीरता से वह बोला--परन्तु बाबा जी, इस चाल न देखी, तो क्या देखा?

(२)

बाबाजी भी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशंसा दूसरे के से सुनने के लिये उनका हृदय भी अधीर हो उठा। घोड़े को खो बाहर लाये, और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। एकाएक उच सवार हो गये। घोड़ा वायुवेग से उड़ने लगा। उसकी चाल देख उसकी गति देख कर खड्गसिंह के हृदय पर सांप लोट गया। व डाकू था, और जो वस्तु उसे पसन्द आ जाय, उस पर अपना अधिकार समझता था। उसके पास बाहु-बल था, और आदमी थे। जाते-जा उसने कहा--बाबाजी, मैं यह घोड़ा आपके पास न रहने दूँगा।

बाबा भारती डर गए। अब उन्हें रात को नींद न आती थी। सारी रात अस्तबल की रखवाली में कटने लगी। प्रति-क्षण खड्गसि का भय लगा रहता। परन्तु कई मास बीत गए और वह न आया।

गर्दन पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—बाबाजी यह घोड़ा आपको न दूँगा।

"परन्तु एक बात सुनते जाओ।"

खड्ग सिंह ठहर गया। बाबा भारती ने निकट जाकर ओर ऐसी आँखों से देखा जैसे बकरा कसाई की ओर देखता और कहा—यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका। मैं तुम से वापस के लिए न कहूँगा। परन्तु खड्गसिंह, केवल एक प्र करता हूँ, उसे अस्वीकार न करना; नहीं तो मेरा दिल जायगा।

"बाबा जी, आज्ञा कीजिए। मैं आपका दास हूँ, केवल यह घोड़ा न दूँगा।'

"अब घोड़े का नाम न लो, मैं तुम से इसके विषय में कुछ न कहूँगा। मेरी प्रार्थना केवल यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।'

खड्गसिंह का मुंह आश्चर्य से खुला रह गया। उसका विचार था कि मुझे इस घोड़े को लेकर यहां से भागना पड़ेगा। परन्तु बाबा भारती ने स्वयं उससे कहा—इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना। इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खड्गसिंह ने बहुत सोचा, बहुत सिर मारा, परन्तु कुछ समझ न सका। हार कर उसने अपनी आँखें बाबा भारती के मुख पर गड़ा दीं, और पूछा—बाबाजी, इसमें आपको क्या डर है?

सुनकर बाबा भारती ने उत्तर दिया—लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।

और यह कहते-कहते उन्होंने सुलतान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ लिया, जैसे उनका उससे कभी कोई सम्बन्ध ही न था। बाबा चले गये, परन्तु उनके शब्द खड्गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूंज रहे थे। सोचता था, कैसे ऊँचे विचार हैं! कैसा पवित्र भाव

बाबा भारती दौड़ते हुए अन्दर घुसे, और अपने घोड़े गले से लिपट कर इस प्रकार रोने लगे. जैसे बिछुड़ा हुआ चिरकाल के पश्चात् पुत्र से मिलकर रोता है। बार उसकी पीठ पर हाथ फेरते, बार-बार उसके मुँह पर देते और कहते थे—अब कोई ग़रीबों की सहायता से मुँह मोड़ेगा।

थोड़ी देर के बाद जब अस्तबल से बाहर निकले, तो आँखों से आँसू बह रहे थे, ये आँसू उसी भूमि पर ठीक जगह गिर रहे थे, जहाँ बाहर निकलने के बाद खड्गसिंह खड़ा कर रोया था।

दोनों के आँसुओ का उसी भूमि की मिट्टी पर परस्पर हो गया।

प्रेम-तरु

डेढ़ सौ साल बीत चुके हैं, परन्तु देवी सुलक्खी का नाम आज भी उसी तरह जीता-जागता है। गुरदासपुर के ज़िले में कड़याला नाम का एक छोटा-सा गांव है, जहां ज़्यादा आबादी हिन्दू जाटों की है, वहां आप किसी से पूछिये, वह आपको देवी सुलक्खी की समाधि का पता बता देगा। यहाँ प्रति वर्ष मेला लगता है, स्त्रियां रङ्ग-बिरंगे वस्त्र पहन कर आती हैं, और इस पर घी के दीप जलाती हैं। जब बेर पकते हैं, तो सब से पहले बेर देवी सुलक्खी की समाधि पर चढ़ाए जाते हैं, इसके बाद लोग खाते हैं। क्या मजाल कि इस समाधि पर बेर चढ़ाए बिना कोई बेर को मुँह भी लगा जाये। दीवाली की रात को लोग पहले यहाँ दिए जलाते हैं, इसके बाद अपने घर में जलाते हैं। किसी में इतना साहस नहीं कि देवी सुलक्खी की समाधि पर रोशनी किए बिना अपने घर में रोशनी कर ले। ब्याह के बाद दुलहनें पहले यहां आकर अपनी श्रद्धा प्रकट करती हैं, इसके

बाबा भारती दौड़ते हुए अन्दर घुसे, और अपने घोड़े के गले से लिपट कर इस प्रकार रोने लगे, जैसे बिछुड़ा हुआ पिता चिरकाल के पश्चात् पुत्र से मिलकर रोता है। बार-बार उसकी पीठ पर हाथ फेरते, बार-बार उसके मुँह पर थपकियाँ देते और कहते थे—अब कोई गरीबों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा।

थोड़ी देर के बाद जब अस्तबल से बाहर निकले, तो उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे, ये आँसू उसी भूमि पर ठीक उसी जगह गिर रहे थे, जहाँ बाहर निकलने के बाद खड्गसिंह खड़ा हो कर रोया था।

दोनों के आँसुओ का उसी भूमि की मिट्टी पर परस्पर मिलाप हो गया।

प्रेम-तरु

डेढ़ सौ साल बीत चुके हैं, परन्तु देवी सुलक्खी का नाम आज भी उसी तरह जीता-जागता है। गुरदासपुर के ज़िले में कड़याल नाम का एक छोटा-सा गांव है, जहां ज्यादा आबादी हिन्दू जाटों की है, वहां आप किसी से पूछिये, वह आपको देवी सुलक्खी की समाधि का पता बता देगा। यहाँ प्रति वर्ष मेला लगता है, स्त्रियां रङ्ग-बिरंगे वस्त्र पहन कर आती हैं, और इस पर घी के दीप जलाती हैं। जब बेर पकते हैं, तो सब से पहले बेर देवी सुलक्खी की समाधि पर चढ़ाए जाते हैं, इसके बाद लोग खाते हैं। क्या मजाल कि इस समाधि पर बेर चढ़ाए बिना कोई बेर को मुँह भी लगा जाये। दीवाली की रात को लोग पहले यहाँ दिए जलाते हैं, इसके बाद अपने घर में जलाते हैं। किसी में इतना साहस नहीं कि देवी सुलक्खी की समाधि पर रोशनी किए बिना अपने घर में रोशनी कर ले। ब्याह के बाद दुलहनें पहले यहां आकर अपनी श्रद्धा प्रकट करती हैं, इसके

कर उसकी प्राप्ति के लियेअधीर रहते थे। थोड़े ही में गुज़ारा हो जाता था। एक कमाता था, दस खा लेते थे। आज वह ज़माना कहां ? दस कमाने वाले हों, एक बेकार को नहीं खिला सकते। उस समय के ब्राह्मण सारा-सारा दिन पूजा-पाठ में लगे रहते थे। खाने पीने को आट जजमानों के यहां से आ जाता था। दोनों को किसी प्रकार की चिन्ता न थी। हाँ, कभी-कभी निःसन्तान होने पर कुढ़ा करते। यदि एक भी बच्चा हो जाता, तो दोनों का मन बहल जाता। उनका जीवन मधुर, प्रकाशमय तथा विनोद-पूर्ण हो जाता। उनको कोई शुग़ल मिल जाता। अब ऐसा मालूम होता था जैसे उनका घर सूना-सूना है, जैसे उनके लिये दुनिया बिलकुल फीकी-फीकी है, जैसे उनका जीवन लम्बी, अन्धेरी, समाप्त न होने वाली रात है जिस में कोई तारा नहीं, कोई चांद नहीं, केवल निराशा के काले बादल घिरे हुए हैं। उन बादलों में कभी-कभी थोड़ी देर के लिये आशा की बिजली भी चमक जाती है, परन्तु उस से उनके दिलों का अन्धकार बढ़ता ही था, घटता न था। इसी तरह कई वर्ष गुज़र गये।

एक दिन जयचन्द ने अपने आंगन के कोने में नवजात बच्चे के समान बेरी का एक पौदा देखा, जो स्वयं ही उग आया था। पौदा बहुत छोटा था और साधारण पौदों से ज़रा भी भिन्न न था, किन्तु जयचन्द को ऐसा प्रतीत हुआ, मानों यह पौदा न था, प्रकृति का अद्भुत सौंदर्य था। वे उसके छोटे-छोटे रग-रेशे और चिकनी-चिकनी ज़रा-सी कोपलें देख कर बेसुध से हो गए। शान्ति के पुतले पर अशांति छा गई। दौड़े-दौड़े सुलक्खी के पास गए, और बोले—'आओ, कुछ दिखाऊँ। भगवान् ने हमारे घर बूटा लगाया है, बड़ा सुन्दर है।"

सुलक्खी ने जाकर देखा, तो एक नन्हा-सा पौदा था। बोली—"क्या है यह ? ऐसे प्रसन्न क्यों हो ?"

जयचन्द—"बेरी का पौदा है। अभी छोटा है, चन्द दिनों में

रहा है। कहता है—मैं तुम्हारा बेटा हूँ।"

जयचन्द—'भाई, यह बात तो तुम ने मेरे मुँह से छीन ली। मैं भी यही कहने जा रहा था। हां, बेटा तो है ही। इसे खूब प्यार करोगी न ?"

सुलक्खी—"तुम्हारे कहने की क्या आवश्यकता है ? अपने बेटे से कौन प्यार नहीं करता ?"

जयचन्द—"मैं डरता हूँ, कहीं मुझे न भूल जाओ। बड़ी आयु में बालक पाकर स्त्रियां पति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगती हैं, मगर मुझ से तुम्हारी लापरवाही बर्दाश्त न होगी। यह अभी से कहे देता हूँ।"

सुलक्खी—"चलो हटो ! तुम्हें तो अभो डाह होने लगी।"

जयचन्द हँसते-हँसते घर के भीतर चले गये, परन्तु सुलक्खी कई घण्टे वहीं धूप में खड़ी बेरी की ओर देखती रही और खुश होती रही। आज भगवान ने उसके घर बूटा लगा दिया था। आज उस को ऐसा अनुभव हुआ, जैसे वह बांझ नहीं रही—पुत्रवती हो गई है—अबोध बालक छाछ को दूध समझ कर खुश हो रहा था।

(२)

अब जयचन्द और सुलक्खी दोनों को एक काम मिल गया। कभी बेरी को पानी देते कि कुम्हला न जाये, कभी खुरपी लेकर उसके आसपास की जमीन खोदते कि उसे अपनी खुराक प्राप्त करने में दिक्कत न हो, कभी उसके गिरदा-गिर्द बाड़ लगाते कि कोई जीव-जन्तु हानि न पहुँचाये, कभी दो चारपाईयाँ खड़ी कर के उस पर चादर फैला देते कि गरमी से सूख न जाये। लोग यह देखते थे, और उनकी इस मूर्खता पर हँसते थे। कोई-कोई कह भी देता था कि इनकी अक्ल मारी गई है, साधारण वृक्ष को पुत्र समझ बैठे हैं।

मगर प्रेम के इन सरलहृदय भक्तों को इसकी ज़रा भी परवा न थी। उन्हें उस बेरी की कोंपलें बढ़ती देखकर वैसी ही प्रसन्नता

सोने के भूपण पहने हैं। किस शान से खड़ी है, देखकर मन नाचने लगता है।

जयचन्द कहते—"यह मेरे बेटे की पहली कमाई है। इसे और कौन कहता है? यह तो मोहरें हैं, बल्कि मुझे तो इस के सामने मोहरें भी तुच्छ मालूम होती हैं। उन्हें मनुष्य बनाता है। इसे स्वयं भगवान अपने हाथों से सँवारता है। इसके सामने मोहरें और अशरफ़ियाँ किस गिनती में हैं? थोड़े दिनों में यह बेर बन जायेंगे। उन में जो सुन्दरता, जो यौवन, जो मिठास होगी, वह सोने के उन सिक्कों में कहाँ?"

सुलक्खी कहती—"जिस दिन पहले बेर उतरेंगे, उस दिन मिठाई बांटूँगी।"

जयचन्द कहते—"मैं रतजगा करूँगा, गाँव के सारे लोगों को बुलाऊँगा। सारी रात रौनक़ रहेगी।

सुलक्खी कहती—"ख़ूब ख़र्च करना पड़ेगा।"

जयचन्द कहते—"लोग बेटों की ब्याह-शादी में लुटाते हैं। मेरे लिए यही बेटे का ब्याह है। सब कुछ खर्च हो जाये, तब भी परवा नहीं, परन्तु एक बार दिल के अरमान निकल जाँय। कोई अभिलाषा शेष न रह जाय।

यह सुनकर सुलक्खी किसी दूसरी दुनियां में पहुँच जाती थी। उनके हृदयरूपी समुद्र में ख़ुशी की तरंगें उठने लगती थीं, जैसे चांदनी रात में समुद्र में ज्वार आ जाये।

(४)

आख़िर वह दिन भी आ गया, जिसकी पति-पत्नी दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले दिन बेरी के दो सौ बेर उतरे। ये बेर इतने मोटे, ऐसे गोल-गोल, ऐसे लाल, इतने सुन्दर और चिकने थे कि देखकर जी ख़ुश हो जाता था। दोपहर का समय था। सुलक्खी ने पुराने ज़माने की हिन्दू स्त्रियों की तरह नये कपड़े पहने, लाल रंग की ... ओढ़ी, नाक में नथ पहनी, और जाकर जयचन्द के सामने

गुड़ से भी मीठा है, आम से भी मीठा है। कोई और बेर है, या नहीं ?'

जयचन्द की बांछें खिली जाती थीं। उन्होंने दो बेर उठाकर जजमान के हाथ में दे दिये। जजमान खाता जाता था, और तारीफ़ करता जाता था। कहता था—"पण्डित जी, ये बेर क्या हैं, खांड के खिलौने हैं। मेरी इतनी आयु हो गई, मगर ऐसे बेर मैंने आज तक नहीं खाये। परमात्मा जाने, इनमें कैसा स्वाद है, मालूम होता है, जैसे कोई ख़ुशबू भरी है, जैसे किसी ने इत्र भर दिया है।'

जयचन्द—"परमात्मा ने हमारी मेहनत सफल कर दी है।'

जजमान—'सारे इलाके में ऐसे बेर मिल जायें, तो मूंछें मुड़वा दूं। दूर-नज़दीक से लोग आया करेंगे। मालूम होता है, आपने अभी तक नहीं चखे।'

जयचन्द—'जजमानों को भेंट कर लूं, फिर खाऊंगा।"

जजमान—'हैरान रह जाओगे। ऐसे बेर काबुल-कन्धार में भी न होंगे। हमारे घर में दस-बीस बेरों से क्या बनता है ? देखते देखते खतम हो गये। और बेर कब तक उतरेंगे ? हम बीस और लेंगे।"

जयचन्द—'आपका अपना वृक्ष है दो चार दिन को और उतरेंगे, तो भिजवा दूंगा। मुझे दूसरों को खिला कर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह खाकर नहीं होती। लीजिए, दो और लेजाइये। छः बाकी हैं। हम दोनों तीन-तीन खायेंगे। हमें ये बहुत हैं।"

थोड़ी देर बाद एक और जजमान आया। उसने भी इतनी तारीफ़ की कि जयचन्द की आंखें चमकने लगीं। बोले—'यह प्रेम का वृक्ष है, इसमें प्रेम के बेर लगे हैं। इससे मीठे संसार-भर में न होंगे। भाई, इतनी मेहनत कौन करता है ? आप दोनों ने एक मिसाल कायम कर दी। दो बेर खाये हैं, दो और मिल जायं तो मज़ा आ [illegible]। फालतू हैं, या नहीं ?

[illegible]

ज्ञानचन्द्र—"यह सब तुम्हारे परिश्रम का फल है। रोज़ पानी दिया करती थीं। तुम्हारे हाथों का पानी मालूम हो गया।"

सुलक्खी—"और जो तुम कपड़ों से छाया करते फिरते थे, उ
का कोई असर ही नहीं? यह सब उसका नतीजा है।"

जयचन्द—"तुम देर में लौटीं, नहीं तो एक-एक खा लेते। अ
दो चार दिन के बाद पकेंगे।"

(५)

परन्तु जयचन्द के भाग्य में बेर का पकाना लिखा था, बेर खा
नहीं लिखा था। रतजगे के बाद उनको सहसा बुखार हो गया। गां
में जैसा इलाज हो सकता था, हुआ। हकीम ने समझा, थकावट
बुखार है, साधारण औषधियों से उतर जायगा, परन्तु यह थका
का बुखार न था। वह मृत्यु का बुखार था, जिसकी दवा दुनिया
बड़े-से-बड़े हकीम के पास भी नहीं। चौथे दिन प्रातः ही जयचन्
सुलक्खी से घंटा भर धीरे-धीरे बातें करते रहे, रोते और रुलाते रहे
दुनियादारी की बातें समझाते रहे। ये बातें उनके जीवन का सार थीं
सुलक्खी ये बातें सुनती थी, और रोती जाती थी। इस समय उसक
दिल बस में न था। वह चाहती थी, जिस तरह हो, पति को बचा ले।
यदि उसके बस में होता, तो वह अपनी जान देकर भी उन्हें बचा
लेती। इसमें उसे ज़रा भी संकोच न होता। परन्तु जो भाग्य में बदा
हो, उसे कौन रोक सकता है। थोड़ी देर बाद इधर संसार का सूर्य
उदय हो रहा था, उधर जयचन्द के जीवन और सुलक्खी की दुनिया
का सूर्य हमेशा के लिए अस्त हो गया।

अब सुलक्खी संसार में बिलकुल अकेली थी। अब उसका सिवा
एक छोटे भाई के और कोई भी न था। थोड़े दिन रोती रही।
इसके बाद चुप हो गई, इसलिये नहीं कि मृत्यु का शोक भूल
गई, बल्कि इस लिए कि उसकी आँखों में आंसू न रहे थे। रो-रो
कर आँसू भी समाप्त हो जाते हैं, मगर उसके दिल के घाव हमेशा
हरे थे। उसे किसी पहलू कल न पड़ती थी। पति की मृत्यु के बाद
किसी ने उसे हंसते न देखा। न अच्छा खाती थी, न अच्छा पहनती
उसका ज्यादा समय दुखी लोगों की सेवा में गुज़रता था

ज्येष्ठ का महीना था। सुलक्खी बेरी के सारे बेर बांट चुकी थी। अब बेरी पर एक बेर भी बाकी न था। सुलक्खी बेरी के पास उसकी फलों से ख़ाली डाली को देखती थी, और खुश होती थी। इस साल का कर्तव्य भी पूरा हो गया। इतने में उस के एक हाड़ीराम ने आ कर सुलक्खी को नमस्कार किया और बोला— "पण्डितानी जी! हमारे बेर कहां हैं?"

सुलक्खी के सिर पर जैसे बिजली-सी गिर पड़ी। हैरान थी, कहे, क्या न कहे। हाड़ीराम गांव में सब से उजड्ड जाट था। ज़रा सी बात पर जोश में आ जाता था, और मरने-मारने को हो जाता था, उस की लाल आंखें देख कर सारा गांव सहम था। वह अपने परिवार सहित दो महीने से कहीं बाहर गया हुआ था। सुलक्खी एक-दो बार उस के मकान पर गई, और किवाड़ बन्द पा कर लौट आई। इस के बाद वह उसे भूल-सी गई, और बेर समाप्त हो गये। और अब—

हाड़ीराम उसके सामने खड़ा था। सुलक्खी ने उसकी ओर खतावार निगाहों से देखा, और कहा—"जजमान! बेर तो खतम हो गये।"

हाड़ीराम ने ज़रा गर्म हो कर कहा—"वाह। खतम कैसे हो गये? हमें तो मिले ही नहीं!"

सुलक्खी—"तब तुम जाने कहां चले गये थे। दो बार तुम्हारे मकान पर ले कर गई, दोनों बेर दरवाज़ा बन्द था। लौट आई। इसके बाद मुझे खयाल नहीं रहा।"

हाड़ीराम—(त्योरियां चढ़ा कर)—"खयाल क्यों नहीं रहा? इतनी बच्चा भी तो नहीं हो।"

सुलक्खी-(शांति से)—"अब जजमान, तुम से बहस कौन करे, भूल हो गई। अगले साल दुगने ले लेना।"

हाड़ीराम—"खाना तो कभी नहीं भूलती हो, न फ़सल पर ग़ल्ला भूलती हो। हमारे बेरों का समय आया तो भूल गई!"

हो। वहां से चली, तो उसे रास्ता न दिखाई देता था। उसके पांव तले से ज़मीन निकलती जा रही थी। उस समय उसके शरीर में ज़रा भी शक्ति न थी। पग इस तरह लड़खड़ा रहे थे, जैसे अभी गिर पड़ेगी। मार्ग के दोनों ओर लोग खड़े उसको देखते थे, और हाड़ीराम को गालियां देते थे। उस समय उन्हें सुलक्खी का विचार था, हाड़ी का भय न था। वे सुलक्खी के साथ सहानुभूति दिखाना चाहते थे, और उन्हें सिवा हाड़ी को गालियां देने के और कोई ढंग न दिखाई देता था।

उधर सुलक्खी का आंगन स्त्री-पुरुषों से भरा था और मध्य में बेरी कटी थी। लोग कहते थे-"कितना ज़ालिम है, ज़रा सी बात पर बेरी काट दी। काटने पर ही सब्र किया होता, तो भी खैर थी, अगले वर्ष फिर उग आती; परन्तु इसने तो जड़ें भी उखाड़ दीं। आदमी काहे को है, चंडाल है!"

सहसा सुलक्खी छोटा-सा घूँघट निकाले आई और आंगन में खड़ी हो गई। इसने बेरी की डालों को ज़मीन पर पड़ा देखा, तो उसके हृदय पर छुरियां चल गईं। उसको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे ये वृक्ष की डालियां नहीं, उसकी संतान के हाथ-पांव हैं। उसने आगे बढ़ कर एक-एक डाली को गले लगाया, और रो-रो कर विलाप किया। इस विलाप को सुन कर सभी रोने लगे। सुलक्खी कहती थी—"अरे! तूने मुझे बुला क्यों न लिया? बच्चा! पता नहीं जब तुझ पर ज़ालिम का कुल्हाड़ा चला होगा, तेरा दिल क्या कहता होगा। तड़पता होगा। सोचता होगा, मां काहे को है, डायन है। यह क़साई मेरे हाथ-पांव काट रहा है, वह बाहर घूम रही है। बच्चा! मुझे क्या मालूम था, तेरे सिर पर मौत खेल रही है। अभी भला-चंगा छोड़ गई थी, अभी-अभी तू बाहें फैला कर खड़ी थी। तुझे देख कर जी प्रसन्न हो जाता था। इतनी जल्द तैयारी कर ली। अब लोग तेरे बेरों को तरसेंगे। ऐसे मीठे बेर और यहां कहीं नहीं।

राय कृष्णदास

(जन्म—सन् १८६२)

राय कृष्णदास जी काशी के सुप्रतिष्ठित रईस हैं। आपको ललित कलाओं का बहुत शौक है। आप काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के प्रधान रहे हैं, और कला-भवन बनारस के संस्थापक हैं। आप कवि और कहानी-लेखक दोनों रूपों में हमारे सामने आते हैं। आप गद्य-काव्य लिखने में अत्यन्त पटु हैं। आपकी कहानियों में घटना की उपेक्षा ही उनकी विशेषता है।

आपकी रचनाएँ—

गल्पसंग्रह—अनाख्या, सुधांशु।

कवितासंग्रह—भावुक।

गद्यकाव्य—साधना, प्रवाल आदि।

राय कृष्णदास जी की रचनाओं में संस्कृत-शब्दों की भरमार रहती है, अतएव भाषा कुछ क्लिष्ट हो गई है। हां, संवाद की भाषा बहुत ही सरल, सुगम तथा स्वाभाविक है। ऐसा प्रतीत होता है मानो हमारे सामने खड़े हुए कोई बातचीत कर रहा है। वाक्य छोटे-छोटे होते हैं। और कहीं कहीं ही कोई मुहावरा अथवा अलंकार दीख पड़ता है। भावों की गंभीरता उनकी कहानियों का विशेष गुण है।

कला और कृत्रिमता

सम्राट् ने एक महल बनाने की आज्ञा दी—अपने वैभव के अनुरूप अपूर्व सुख और सुखमा की सीमा।

देश-भर के बड़े-बड़े कारीगरों का दिमाग़ उसी का नक्शा तैयार करने में भिड़ गया। नक्शा तैयार हुआ। उसे देख कर सम्राट् फड़क उठे, उनके गर्व को बड़ी मधुर गुदगुदी हुई। जिस का नक्शा पसन्द हुआ था, उसके भाग्य खुल गये।

जिस समय उस महल की तैयारी का चित्र उनके मनोनेत्र के खड़ा हुआ, संसार के बड़े-से-बड़े प्रासाद-निर्माता नरेन्द्र—

धीरे-धीरे यह चर्चा महाराज के कानों तक पहुंची कि नीहार अपने घर में एक महल बना रहा है—एक छोटा-सा नमूना। लोग राजप्रासाद के और इस के सौंदर्य की तुलना करने लगे हैं कि वह इस के आगे कुछ भी नहीं, इसकी चारुता और कौशलता अपूर्व है। नगर भर में इसकी धूम थी।

अधीश्वर की भावना को चोट लगी। जिस मूर्ति की वे उपासना कर रहे थे, उस पर जैसे किसी ने आघात किया हो। परन्तु वे ज्वलन-प्रकृति के न थे, उनके हृदय में उसे देखने की इच्छा जाग उठी।

उनके हृदय में कला का जो राजस प्रेम था, वह उन्हें प्रेरित करने लगा। क्योंकि, उनसे कहा गया था कि जिस समय वह काम करने लगता है, मग्न हो जाता है, कहां क्या हो रहा है, इस की खबर ही नहीं रह जाती। उसके चारों ओर देखने वालों की भीड़ लगी रहती है। किन्तु इससे क्या! वह ज्यों-का-त्यों अपने विनोद में लगा रहता है। वे इस तल्लीनता को देखने के लिए उत्सुक हो उठे, अपने को रोक न सके।

एक दिन वे चुपचाप नीहार के यहाँ पहुंचे। दर्शक-समूह सम्राट को देख कर खड़बड़ाया, किन्तु उनके एक इंगित से सब जहाँ-के-तहाँ शांत हो गए। चुपचाप सम्मानपूर्वक उन्हें रास्ता दे दिया।

कलावन्त की उस तन्मयता, उस लगन, उस समाधि के देखने में मनुष्य स्वयं तमाशा बन जाता था। महाराज भी वैसे ही रह गए। जिस प्रकार अचेतन यन्त्र चेतन बन कर काम करने लगता है, उसी प्रकार यह चेतन अचेतन यन्त्र हो कर अपनी धुन में लगा हुआ था। उसकी कामना के प्राबल्य ने चेतन-अचेतन का भेद मिटा दिया था—तभी न वह पत्थर में जान डाल सकता था।

सम्राट् का स्वप्न विकीर्ण हो गया, जैसे गुलाब की पंखड़ियाँ अलग-अलग हो कर उड़-पुड़ जाती हैं। जिस प्रकार शुक्ति में र... उसी समय तक रहता है, जब तक वास्तविक रजत सा...

"क्यों, संकोच क्या है?"

"यह देव को पसंद आ चुका है।"

"तो उससे क्या हुआ"—सम्राट् ने साहस बंधाते हुए कहा—" अपनी स्पष्ट राय दो।"

"एक खिलवाड़ है!"—नाक सिकोड़ कर उसने कहा।

"तभी तो इतना आकर्षक है!"

"किन्तु निरर्थक तो है स्वामी!"

"नहीं, रहस्यमय कह सकते हो। निरर्थक तो कोई वस्तु नहीं जिसे हम नहीं समझ पाते, उसे निरर्थक कह बैठते हैं।"

"हाँ भगवान्! किन्तु यदि वही रहस्य दुरूह हो जाता है तो व्य अवश्य हो जाता है—चाहे निरर्थक न हो।"

"किन्तु यहाँ तो उसका गूढ़ हो जाना आवश्यक था, वहीं त कला है!"

"सेवक की समझ में यह न आया!"

"सुनो, केवल सौन्दिर्य की अभिव्यक्ति तो इसके निम्र्माता का उद्देश्य हुई नहीं। उसे तो एक वस्तु—निवास-स्थान की रचना करनी थी किसी साम्राट् की पद-मर्यादा के अनुरूप। अतएव ऐसे भवन के लिए जितने अलंकार की अपेक्षा थी, उसकी इस में तनिक भी कसर नहीं। किन्तु वहीं तक बस। उससे एक रेखा भी अधिक नहीं, क्योंकि घर तो घर, चाहे कुटी हो अथवा राजमहल, उसका प्रधान उपयोग तो यही है न, कि उसमें जीवन बसेरा ले—पंछी अपना नीड़ भी तो इसी सिद्धान्त पर बनाता है, वह मृगमरीचिका की तड़क-भड़क वाला पिंजरा नहीं बनाता जो जीवन को बन्दी करके ग्रस लेता है। तुम्हारे और उसके कौशल में भी वही अन्तर है। केवल बाहरी आकर्षण होना ही कला नहीं। उसका रूप प्रसंग के अनुकूल होना ही उस की चारुता है।"

"नाथ! अपने नन्हेंपन के कारण वह ऐसा जान पड़ता है"-नम्रता से उसने सीख दी!

से नहीं, वही जो उस पर सहज खेला करती थी—"यह कल्पना 'स्वान्तस्सुखाय' उपजी है, और वह 'हुकुम पाई, उपजाई गई है। देव कोई फर्माइश मुझे भी दें तो मेरी कलई आप ही खुल जाये !"

"बस बस ! अपने महास्थ पति को तो तुमने परास्त किया ही था, अपने महाराज को भी हरा दिया !"—प्रसन्नता से गद्गद् सम्राट ने कहा।

उसके लिये उनकी आँखों में स्नेह झलक रहा था और महास्थपति की दृष्टि में आसीस—केवल आसीस ही नहीं, वन्दना भी उमड़ी पड़ती थी।

सियारामशरण गुप्त

(जन्म—सन् १८९५)

गुप्त जी का निवास-स्थान चिरगांव, जिला झांसी है। आपके पिता सेठ श्री रामचरण जी कविता के प्रेमी थे तथा स्वयं भी कविता करते थे। गुप्त जी पांच भाई हैं जिनमें श्री मैथिलीशरण गुप्त खड़ी बोली के सुविख्यात कवि हैं।

गुप्त जी एक प्रसिद्ध कवि ही नहीं, अच्छे गल्पकार और सफल उपन्यासकार भी हैं। यही नहीं, वे नाटककार तथा निबन्ध-लेखक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। आपकी कृतियां साहित्य-समाज में आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं।

आपकी रचनाएं ये हैं:—

गल्प-संग्रह—मानुषी आदि।

उपन्यास—नारी, गोद, आदि।

कविता—मौर्यविजय, अनाथ, दुर्वादल, पथिक, आर्द्रा, आत्मोत्सर्ग, निषाद आदि।

निबन्ध—राचझूठ।

आपको कहानी-लेखन-कला से विशेष प्रेम है। आपकी कविताओं में भी कहानी का-सा आभास मिलता है। आपकी कहानियां जीवन की गहरी अनुभूति १५ रखती हैं।

अभव्य वचनों और कानों के बीच में कोलाहल की परिखा-स खड़ी कर देनी चाही! थोड़ी देर तक चुप रह कर वह बोला—"बेटा धैर्य रख। अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरत माता की गोद हरी-भरी होती है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर दें की वस्तु नहीं।"

लाडले लड़के ने कहा—व्रत-पालन करते हुए इतने दिन तो हे गये, पानी का कहीं चिह्न तक नहीं है। गरमी ऐसे पड़ रही है वि धरती के नदी-नाले सब सूख गये। फिर सूर्य के और निकट रहने वाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है?

"बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवन-दान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिये थोडी-सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी है।"

"पिता जी, मैं थोड़ी-क्षुधा से नहीं डरता; परन्तु यह भी नहीं चाहता कि क्षुधा ही क्षुधा सहन करता रहूं। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ। देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूंगा। घनश्याम को भी तो सोचना चाहिये था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिए नहर, तालाब और कुओं का बन्दोबस्त कर लिया है। कृषि ने आप की तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊँगी। हमीं क्यों इस तरह कष्ट सहें। आप चाहे मुझे रक्खें या छोड़ें, मैं यह झंझट न मानूंगा।"

चातक ने देखा—मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा—यह बताओ, तुम जल कहां से ग्रहण करोगे?

चातक-पुत्र चुप! उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था। वह सोचता था, जिस प्रकार लाखों जीव-जन्तु जल पीते हैं, उसी प्रकार मैं भी पीऊँगा। परन्तु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था।

चातक ने कहा—गंगा जी तो यहां से पांच दिन की उड़ान पर हैं। तू नहीं मानता तो जा। परन्तु यदि तू ने और कहीं एक बूंद भी ली, तो हमें मुँह न दिखाना।

चातक-पुत्र प्रणाम करके फर्र-से उड़ गया।

(२)

कुटीर

बुद्धन का कच्चा, खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुक कर घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दत्तक' से पूरी किया चाहती थीं।

उस घर में और कुछ हो या न हो, आंगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातक-पुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी निबौरी की तरह उस वेदना में भी कुछ माधुर्य था।

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक उसके पैरों में जीवन-यात्रा की इतनी ही मंज़िल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके मानो आधे आधे शरीर का बटवारा कर लिया! स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में १५-१६ वर्ष का एक-मात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रति दिन सन्ध्या-समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया।

चातक ने कहा—गंगा जी तो यहां से पांच दिन की उड़ान प
हैं। तू नहीं मानता तो जा। परन्तु यदि तू ने और कहीं एक बूंद
ली, तो हमें मुँह न दिखाना।

चातक-पुत्र प्रणाम करके फर्र-से उड़ गया।

(२)

कुटीर

बुद्धन का कच्चा, खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुक कर घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दत्तक' से पूरी किया चाहती थीं।

उस घर में और कुछ हो या न हो, आंगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातक-पुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी निबौरी की तरह उस वेदना में भी कुछ माधुर्य था।

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक उसके पैरों में जीवन-यात्रा की इतनी ही मंज़िल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके मानो आधे आधे शरीर का बटवारा कर लिया! स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में १५-१६ वर्ष का एक-मात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रति दिन सन्ध्या-समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया।

सब वृत्तान्त सुना कर गोकुल अपराधी की भांति खड़ा होकर बोला—बप्पा, आज खाने के लिए कुछ नहीं है। महतो से कुछ उधार माँग लाता तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।

बुद्धन की आंखों से झर-झर आँसू झरने लगे। गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भर कर उसने छाती से लगा लिया आनन्दातिरेक ने उसका कण्ठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा, वह दो एक दिन की तो बात ही क्या जीवन भर की क्षुधा शान्त कर सकती है। धन-सम्पत्ति मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगे, मानो एकाएक उसके सब दुःख-रोग दूर हो गये हैं। अब वह बिना किसी चिन्ता के मृत्यु का आलिङ्गन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को संभाल कर बुद्धन बोला—अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपये उधार नहीं लाया। वह उधार मांगना भी एक तरह का मांगना ही होता। भगवान ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देख कर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया यह तू मुझ से भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ—सदा ऐसी मति रखना, चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नियत न डुलाना।

× × ×

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आंखों से भी झर-झर आंसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते बड़े सबेरे वह फिर उड़ा। परन्तु आज वह विपरीत दिशा को उसी दिशा को जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान

सब वृत्तान्त सुना कर गोकुल अपराधी की भांति खड़ा होकर बोला—बप्पा, आज खाने के लिए कुछ नहीं है। महतो से कुछ उधार माँग लाता तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।

बुद्धन की आंखों से झर-झर आँसू झरने लगे। गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भर कर उसने छाती से लगा लिया। आनन्दातिरेक ने उसका कण्ठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा, वह दो एक दिन की तो बात ही क्या जीवन भर की क्षुधा शान्त कर सकती है। धन-सम्पत्ति मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगे, मानो एकाएक उसके सब दुःख-रोग दूर हो गये हैं। अब वह बिना किसी चिन्ता के मृत्यु का आलिङ्गन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को संभाल कर बुद्धन बोला—अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपये उधार नहीं लाया। वह उधार मांगना भी एक तरह का मांगना ही होता। भगवान ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देख कर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया यह तू मुझ से भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ—सदा ऐसी मति रखना, चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नियत न डुलाना।

× × ×

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आंखों से भी झर-झर आंसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़े सवेरे वह फिर उड़ा। परन्तु आज वह विपरीत दिशा को [illegible]—उसी दिशा को जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान

कहीं लेना ही था, इस लिये उसने मड़पुरा नामक गाँव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार हो आया था। रक़म पास में थी, और बैलगाड़ी किराये पर करने में ख़र्च ज़्यादा पड़ता, इस लिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहाँ ? ज़ात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चाँदी की बालियां डाले थी, और पैजामा पहने थी। इसके सिवा गाँव के बहुत-से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाँव के बहुत-से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीद कर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात भर के बसेरे के लायक़ स्थान की याचना की। किसी ने भी मंजूर न किया। उन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और छिपे-लुके बेचे थे। ठहराने में तुरन्त ही तरह-तरह की ख़बरें फैलतीं, इसलिए सबों ने इन्कार कर दिया।

गाँव में एक ग़रीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी ज़मीन थी, जिसके किसान जोते हुए थे। निज का हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल की पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु उसको गाँव वाले गढ़ी के आदर-व्यञ्जक शब्द से पुकारा करते थे, और ठाकुर को डर के मारे 'राजा' शब्द से संबोधित करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाज़े अपनी ज्वरग्रस्त पत्नी को लेकर पहुँचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा—"दाऊजू, एक विनती है।"

ठाकुर ने बिना एक रत्ती-भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा—"क्या ?"

रज्जब बोला—"मैं दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हूँ। औरत को ज़ोर से बुखार आ गया है। जाड़े में बाहर रहने से

"वहां किस लिए गये थे?"

"अपने रोज़गार के लिए।"

"काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है।"

"क्या करूँ, पेट के लिए करना ही पड़ता है। परमात्मा ने जिस लिए जो रोज़गार मुकर्रर किया है, वही उस को करना पड़ता है।"

"क्या नफ़ा हुआ?"—प्रश्न करने में ठाकुर को ज़रा सङ्कोच हुआ और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उस से भी बढ़ कर।

रज्जब ने जवाब दिया—"महाराज, पेट के लायक़ कुछ मिल गया है। यों ही।" ठाकुर ने इस पर कोई ज़िद नहीं की।

रज्जब एक क्षण बाद बोला—"बड़े भोर उठ कर चला जाऊंगा। तब तक घर के लोगों की तबीयत भी अच्छी हो जायेगी।"

इसके बाद दिन-भर के थके हुए पति-पत्नी सो गये। काफ़ी रात गए कुछ लोगों ने एक बँधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया। एक फटी-सी रज़ाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया।

आगन्तुकों में से एक ने धीरे से कहा—"दाऊजू, और तो खाली हाथ लौटे हैं। कल सन्ध्या का सगुन बैठा है।"

ठाकुर ने कहा—"आज ज़रूरत थी। ख़ैर कल देखा जायेगा। क्या कोई उपाय किया था?"

"हाँ" आगन्तुक बोला—"एक क़साई रुपये की मोट बाँध इसी ओर आया है। परन्तु हम लोग ज़रा देर में पहुंचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे। ज़रा जल्दी।"

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर में कहा—"क़साई का पैसा न छुएँगे।"

"क्यों?"

"बुरी कमाई है।"

"उसके रुपयों पर क़साई थोड़े ही लिखा है।"

"परन्तु उसके व्यवसाय से वह रुपया दूषित हो गया है।"

पड़ी। गाड़ी में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय के लिये यात्रा को स्थगित कर दिया जब तक कि कम-से-कम बेचारी की कंपकंपी बन्द न हो जाये।

घंटे-डेढ़-घण्टे बाद उसकी कंपकम्पी तो बन्द हो गई, परन्तु ज बहुत तेज़ हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डा दिया, और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला—"दिन भर तो यहीं लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो!"

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लि कहा।

वह बोला—"इतने किराये में नहीं चल सकूँगा। अपना रुपय वापस लो। मैं तो घर जाता हूँ।"

रज्जब ने दांत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत हो कर कह लगा—"भाई, आफ़त सब के ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य व सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं कुछ दया के साथ काम लो।"

क़साई को दया पर व्याख्यान देते सुन कर गाड़ीवान को हंसी आ गई।

उसको टस-से-मस न होते देख कर रज्जब ने और पैसे दिए। तब उसने गाड़ी हाँकी।

(४)

पाँच-छः मील चलने के बाद सन्ध्या हो गई। गाँव कोई पास में न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली, रकम सुरक्षित बन्धी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अंटी का कुछ बोझ कम कर देना पड़ा है—और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही दे देने पड़े। उसे

गुल्ला करके गाँव वालों की मदद से अपना पीछा रज्जब
छुड़ाऊँगा। रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूँगा, परन्तु और
न जाऊँगा। कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले।

(५)

गाड़ी थोड़ी देर और चली होगी कि बैल ठिठक कर खड़े
गए। रज्जब सामने न देख रहा था। इसलिए ज़रा कड़क कर गा
वान से बोला—"क्यों बे नालायक़, सो गया क्या?"

अधिक कड़क से साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुक
में से किसी के कठोर कंठ से निकला—"खबरदार, जो आगे बढ़ा।

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाँच आदमी बड़े-बड़े लठ बाँ
कर न जाने कहाँ से आ गये हैं। उनमें तुरन्त ही एक ने बैलों
जुँआरी पर एक लठ पटका और दो दाएँ-बाएँ आकर रज्जब प
आक्रमण करने को तैयार हो गये।

"यह कौन है?" एक ने गरज कर पूछा।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़ कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला-
"मालिक, मैं तो गाड़ीवान हूँ। मुझ से कोई सरोकार नहीं।"

गाड़ीवान की घिग्घी बन्ध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुए बहुत ही
विनम्र स्वर में कहा—"मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ
नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।"

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उभारी।
गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला—"महाराज, मुझ को छोड़ दो।
मैं तो किराए से गाड़ी लिये जा रहा हूँ। गांठ में खाने के लिये तीन-
चार आने के पैसे ही हैं।"

"और यह कौन है? बतला।" उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—"ललितपुर का एक क़साई।"

रज्जब के सिर पर जो लाठी उभारी गई थी, वह वहीं रह गई।

गुल्ला करके गाँव वालों की मदद से अपना पीछा रज्ज
छुड़ाऊँगा। रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूँगा, परन्तु और
न जाऊँगा। कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले।

(५)

गाड़ी थोड़ी देर और चली होगी कि बैल ठिठक कर ख
गए। रज्जब सामने न देख रहा था। इसलिए ज़रा कड़क कर ग
वान से बोला—"क्यों वे नालायक़, सो गया क्या ?"

अधिक कड़क से साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टु
में से किसी के कठोर कंठ से निकला—"खबरदार, जो आगे बढ़ा।

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाँच आदमी बड़े-बड़े लठ
कर न जाने कहाँ से आ गये हैं। उनमें तुरन्त ही एक ने बैलों
जुँआरी पर एक लठ पटका और दो दाएँ-बाएँ आकर रज्जब
आक्रमण करने को तैयार हो गये।

"यह कौन है ?" एक ने गरज कर पूछा।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़ कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला—
"मालिक, मैं तो गाड़ीवान हूँ। मुझ से कोई सरोकार नहीं।"

गाड़ीवान की घिग्घी बन्ध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुए बहुत ही
विनम्र स्वर में कहा—"मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ
नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।"

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उभारी।
गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला—"महाराज, मुझ को छोड़ दो।
मैं तो किराए से गाड़ी लिये जा रहा हूँ। गांठ में खाने के लिये तीन-
चार आने के पैसे ही हैं।"

"और यह कौन है ? बतला।" उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—"ललितपुर का एक क़साई।"

रज्जब के सिर पर जो लाठी उभारी गई थी, वह वहीं रह गई।

कर दूँगा

गाड़ीवान गाड़ी ले कर बढ़ गया । उन लोगों में से जिस ने गाड़ी पर चढ़ कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, स्वर में कहा —"दाऊजू, आगे से कभी आप के साथ न दाऊजू ने कहा—"न आना । मैं अकेले ही बहुत कर गुज़रता परन्तु बुन्देला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात को बाँध लेना ।"

विनोदशंकर व्यास

(जन्म – सन् १६०१)

आप जयशंकर 'प्रसाद' जी के सुयोग्य शिष्य हैं । आरम्भ में पढ़ने में इनका जी नहीं लगता था । फलतः इनके कुटुम्बी इनसे अप्रसन्न रहते थे परन्तु जब इन्होंने साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया और अपनी प्रतिभा का चमत्क दिखाया तो सब की अप्रसन्नता हवा हो गई । आप हिन्दी के सुप्रसि गल्पकार हैं ।।

रचनाएँ—

गल्प-संग्रह—भूली बात, धूप-दीप, तूलिका ।

आप की कहानियां प्रायः भावपूर्ण और छोटी होती हैं । करुणा आपकी कहानियों की विशेषता है । आप यथार्थवाद के उपासक हैं; अतः आपकी कहानियों में हृदय पर चोट करने की क्षमता बराबर पाई जाती है । भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते हुए दारिद्रय और कष्टों का दिग्दर्शन कराना व्यास जी की असाधारण प्रतिभा का ही परिचायक है । आपकी कहानियों में कथानक की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता ।

व्यास जी की रचना-शैली सरल तथा स्वाभाविक है । वाक्य छोटे होते हैं । भाषा शुद्ध हिन्दी है । स्थान-स्थान पर मुहाविरों का प्रयोग किया गया है । लेखक महोदय का भाषा पर अच्छा अधिकार है ।

उसके प्रति उन लोगों की सहानुभूति हुई। उसी दिन साहब से भेंट हुई, मोती को नौकरी मिली।

साहब की 'डेरी' थी। दूध का व्यवसाय होता था। मोती को दूध दुहने का काम मिल गया। वह इस काम में निपुण भी था। साहब के सामने उसकी परीक्षा हुई थी।

दिन पर दिन बीतने लगे। वह बड़े परिश्रम से अपना कार्य्य करता। अपने नम्र व्यवहार के कारण सब से हिल-मिल गया था। साहब उससे बड़े प्रसन्न रहते। उसका विश्वास जमता गया।

सोना का लिखवाया हुआ पत्र मिला। मोती का हाल पूछा था, रुपये माँगे थे; और कब आवेगा, यह भी पूछा था।

मोती ने सोना को रुपये भेजे और उत्तर में लिखवाया—"मैं यहाँ अब बड़े सुख से हूं। साहब के पास रुपया जमा कर रहा हूँ। दूध के व्यवसाय में यहाँ बड़ा लाभ है, मैं अच्छी तरह उसे जान गया हूँ। कुछ दिन नौकरी करके रुपया जमा करूँगा। फिर खुद इसका कारोबार करूँगा। बड़ा लाभ होगा, तब तुमको भी बुला लूँगा।"

३

दो वर्ष बीत गए।

दिल्ली से मोती ने गाय और भैंसें मंगवाईं। देखते-देखते उसका भाग्य चमका। सफलता से घनिष्ठता हो चली। दूध-मक्खन और घी बेचता। उसकी आँखें खुल गईं। दानों के लिए तरसने वाला मोती अब पैसे जोड़ने लगा।

अपने एक सम्बन्धी के साथ सोना भी बम्बई चली आई। मोती को अब रोटी का कष्ट न होता। बड़े सुख से दोनों का समय बीतने लगा। मोती दिन-रात अपने काम में व्यस्त रहता; किन्तु सोना को शहर का जीवन पसन्द न आया। रुपयों के लोभ से सन्तुष्ट रहना पड़ा।

❀ ❀ ❀

उसके प्रति उन लोगों की सहानुभूति हुई । उसी दिन साहब से भेंट हुई, मोती को नौकरी मिली ।

साहब की 'डेरी' थी । दूध का व्यवसाय होता था । मोती को दूध दुहने का काम मिल गया । वह इस काम में निपुण भी था। साहब के सामने उसकी परीक्षा हुई थी ।

दिन पर दिन बीतने लगे । वह बड़े परिश्रम से अपना कार्य्य करता । अपने नम्र व्यवहार के कारण सब से हिल-मिल गया था। साहब उससे बड़े प्रसन्न रहते । उसका विश्वास जमता गया ।

सोना का लिखवाया हुआ पत्र मिला । मोती का हाल पूछा था, रुपये माँगे थे; और कब आवेगा, यह भी पूछा था ।

मोती ने सोना को रुपये भेजे और उत्तर में लिखवाया—"मैं यहाँ अब बड़े सुख से हूं । साहब के पास रुपया जमा कर रहा हूँ । दूध के व्यवसाय में यहाँ बड़ा लाभ है, मैं अच्छी तरह उसे जान गया हूँ । कुछ दिन नौकरी करके रुपया जमा करूँगा । फिर खुद इसका कारोबार करूँगा । बड़ा लाभ होगा, तब तुमको भी बुला लूँगा ।"

३

दो वर्ष बीत गए।

दिल्ली से मोती ने गाय और भैंसें मंगवाईं । देखते-देखते उसका भाग्य चमका। सफलता से घनिष्ठता हो चली । दूध-मक्खन और घी बेचता। उसकी आँखें खुल गईं । दानों के लिए तरसने वाला मोती अब पैसे जोड़ने लगा ।

अपने एक सम्बन्धी के साथ सोना भी बम्बई चली आई । मोती को अब रोटी का कष्ट न होता । बड़े सुख से दोनों का समय बीतने लगा । मोती दिन-रात अपने काम में व्यस्त रहता; किन्तु सोना को शहर का जीवन पसन्द न आया । रुपयों के लोभ से सन्तुष्ट रहना पड़ता ।

❀ ❀ ❀ ❀

लाली को देख कर मोती दुखी हुआ। वह बूढ़ी हो गई थी दूध नहीं देती थी। उस की ठठरियाँ निकल आई थीं। मोती उसी दिन बूढ़े ब्राह्मण को रुपयों से प्रसन्न कर लाली को अपने यहाँ ले आया।

आज गाँव की नीलामी थी। ज़मींदार की छावनी पर डुग्गी बज रही थी। बड़े-बड़े महाजन एकत्र हुए थे। विलासिता के पर्दे में छिपा हुआ ज़मींदार अपना नग्न दृश्य देख रहा था।

मोती को भी समाचार मिला। वह बड़ा उदास था। नोट का बण्डल बाँध कर वह निकला। सोना ने समझा मोती नीलाम में गाँव खरीदेगा। गाँव के लोग भी इसका पहले से अनुमान कर रहे थे।

मोती नीलाम की बोली सुन रहा था। पूर्व-काल के भयानक दिन उसकी आँखों के सामने फिर गये। उसका हृदय काँपने लगा। सामने ही ज़मींदार आँख नीचे किए बैठा था। मोती अपने को सँभाल न सका, उसने तत्काल ज़मींदार के चरणों पर नोटों का बंडल रखते हुए कहा—मैं यह दुःख भोग चुका हूं। भगवान न करे, किसी को यह दिन देखना पड़े। लीजिए, इससे अपना गाँव बचा लीजिये। आपके कारण ही आज मैं रुपयों को जोड़ सका हूं। अतएव यह आपका ही है।

ज़मींदार आश्चर्य से उसे देखने लगा।

—:—:—

श्री भगवती चरण वर्मा

(जन्म सन १९०३)

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से बी. ए. एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात आप ने साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया और तभी से आप साहित्य-सेवा कर रहे हैं। आप उच्चकोटी के कवि, उपन्यासकार और कहानी-लेखक हैं। आप की कविताओं का हिन्दी-जगत में अच्छा आदर हुआ है। आप की कहानियों पर विदेशी कहानी-साहित्य का विशेष प्रभाव पड़ा है।

लाली को देख कर मोती दुखी हुआ। वह बूढ़ी हो गई थी। दूध नहीं देती थी। उस की ठठरियाँ निकल आई थीं। मोती उसी दिन बूढ़े ब्राह्मण को रुपयों से प्रसन्न कर लाली को अपने यहाँ ले आया।

आज गाँव की नीलामी थी। ज़मींदार की छावनी पर डुग्गी बज रही थी। बड़े-बड़े महाजन एकत्र हुए थे। विलासिता के पर्दे में छिपा हुआ ज़मींदार अपना नग्न दृश्य देख रहा था।

मोती को भी समाचार मिला। वह बड़ा उदास था। नोट के बण्डल बाँध कर वह निकला। सोना ने समझा मोती नीलाम में गाँव खरीदेगा। गाँव के लोग भी इसका पहले से अनुमान कर रहे थे।

मोती नीलाम की बोली सुन रहा था। पूर्व-काल के भयानक दिन उसकी आँखों के सामने फिर गये। उसका हृदय काँपने लगा। सामने ही ज़मींदार आँख नीचे किए बैठा था। मोती अपने को सँभाल न सका, उसने तत्काल ज़मींदार के चरणों पर नोटों का बंडल रखते हुए कहा—मैं यह दुःख भोग चुका हूं। भगवान न करे, किसी को यह दिन देखना पड़े। लीजिए, इससे अपना गाँव बचा लीजिये। आपके कारण ही आज मैं रुपयों को जोड़ सका हूं। अतएव यह आपका ही है।

ज़मींदार आश्चर्य से उसे देखने लगा।

—:—:—

श्री भगवती चरण वर्मा

(जन्म सन १९०३)

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से बी. ए. एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात आप ने साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया और तभी से आप साहित्य-सेवा कर रहे हैं। आप उच्चकोटी के कवि, उपन्यासकार और कहानी-लेखक हैं। आप की कविताओं का हिन्दी-जगत में अच्छा आदर हुआ है। आप की कहानियों पर विदेशी कहानी-साहित्य का विशेष प्रभाव पड़ा है।

[illegible]

प्रायश्चित

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू, दो महीना हुआ, मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार-घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ; सासजी ने माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार-घर खुला है तो कभी भंडार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू को कुछ ऐसा परच गई थी कि रामू की बहू के लिये खाना-पीना

दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आये तब कटोरी साफ़ चटी हुई। बाज़ार से बालाई आयी और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, बालाई ग़ायब। रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली हो। मोरचाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फंसाने का कटघरा आया उसमें दूध, बालाई, चूहे तथा और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली, इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फ़ासिले पर कि रामू की बहु उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहु को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियां, और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिये खीर बनाई। पिश्ता, बादाम, मासने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटे गये, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भर कर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक़ के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाज़ी और देखा कि रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगा कर रामू की बहू सास जी को पान देने चली गई और कबरी ने छलांग मारी, पँजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज़ के साथ फ़र्श पर।

आवाज़ रामू की बहू के कान में पहुची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू

को देखते ही कबरी फरार।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नींद न आई, किस तरह कबरी पर वार किया जाये कि फिर जिन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुसकराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गयी। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गयी।

आवाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़ कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटना-स्थल पर उपस्थित हो गईं। रामू की बहू सर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—अरे राम, बिल्ली तो मर गई। माँजी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।

मिसरानी बोली—माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।

सासजी बोलीं—हाँ ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाये तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला!

महरी ने कहा—फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी को बुला लाऊँ।

सास की जान में जान आई—अरे हाँ, जल्दी दौड़ के [illegible] को बुला ला।

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में तांता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े—पण्डिताइन से मुस्कराते बोले—भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली म डाली। प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे-से, आदमी थे। लम्बाई च फ़ीट दस इंच, और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटो मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँची हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी-खुराक वाले पण्डितों क ढूंढा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पंचाइत बैठी— सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख! बाकी स्त्रियां बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की मां ने कहा—पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत (मुहूर्त) भी जब मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई, तब नरक का पता लग सकता है।

"यही कोई सात बजे सुबह,"—मिसरानीजी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पन्ने के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियां चलाईं, माथे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुंधलापन आया, माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गंभीर हो गया, हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ, प्रातः काल ब्रह्म-मुहूर्त में बिल्ली ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है! रामू की मां, यह तो

बाप रे! इक्कीस तोला सोना! पण्डितजी यह तो बहुत है, तोल भर बिल्ली से काम न निकलेगा?

पण्डित परमसुख हंस पड़े—रामू की मां! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे रुपए का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं!

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई।

पण्डित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिये हैं। रामू की मां, मैं पाठ कर दिया करूंगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।

'पूजा का सामान कितना लगेगा?'

'अरे, कम से कम सामान में पूजा कर देंगे, दान के लिए क़रीब दस मन गेहूं, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पांच मन जौ और पांच मन चना, चार पन्सेरी घी, और मन-भर नमक भी लगेगा। बस इतने से काम चल जायगा।'

'अरे बाप रे! इतना सामान, पण्डितजी इसमें तो सौ-डेढ़-सौ रुपया खर्च हो जायेगा।'—रामू की मां ने रुआंसी होकर कहा।

"फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या बड़ा पाप है, रामू की मां! खर्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को भी देख लो! यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हन्सी-खेल थोड़े ही है। और जैसी जिसकी मरजादा, प्रायश्चित में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं, अरे सौ-डेढ़-सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।'

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की मां ने कहा—

पण्डितजी ठीक तो कहते हैं बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा

[illegible] तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।

छन्नू की दादी ने कहा—और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही तो पाप कटते हैं। दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं।

मिसरानी ने कहा—और फिर बहूजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंडितजी के साथ। पण्डित परमसुख मुसकरा रहे थे। उन्होंने कहा—रामू की माँ, एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्चा है। सो उस से मुँह न मोड़ो।

एक ठंडी सांस लेते हुए रामू की माँ ने कहा, अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।

पण्डित परमसुख जरा कुछ बिगड़ कर बोले—रामू की माँ! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला। इतना कह कर पण्डित जी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

'अरे पण्डित जी, रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न।'—मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पण्डित जी के पैर पकड़े—और पण्डित जी ने अब जमकर आसन जमाया।

"और क्या हो?"

'इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों वक्त पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।' कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा—इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायेगा।

'यह तो पण्डित जी ठीक कहते हैं, पण्डित जी की तोंद तो देखो,'—मिसरानी ने मुसकराते हुए पण्डित जी पर व्यंग किया।

'अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ। रामू की

ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घण्टे में मैं बनवा कर लौटूँगा। तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए—'।

पण्डित जी की बात खतम न हुई थी कि महरी हांफती हुई कमरे में घुस आई, और सब लोग चौंक उठे। रामू की मां ने घबरा-कर कहा—अरी क्या हुआ री?

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—माँजी, बिल्ली तो उठ कर भाग गई!

श्री कृष्णानन्द गुप्त

(जन्म—सन् १९०४)

श्री कृष्णानन्द गुप्त झांसी के रहने वाले हैं। आप साहित्य-कला-मर्मज्ञ और और अच्छे आलोचक हैं। आपकी कहानियां विदेशी साहित्य से पूर्णतः प्रभावित हैं, परन्तु इस पर भी आपकी शैली मौलिक है। आजकल गुप्त जी व्यापार-व्यवसाय में लगे हुए होने के कारण बहुत कम लिखते।

रचनाएं—

गल्प संग्रह—पुरस्कार, जलकण।

आलोचना—प्रसाद के दो नाटक।

उपन्यास—केन।

गुप्त जी की शैली सुन्दर तथा स्वाभाविक है। छोटे-छोटे वाक्य रच क आपने अपनी रचनाओं में आधुनिकता का अच्छा रंग भरा है। आपने पात्र के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है। आपकी कहानियां बड़ी रोचक होती हैं।

करीम मर गया

१८५७ का सन्। जून का महीना। दिन ढल चुका है, पर सूर्य तिरछी किरणें अब भी आग बरसा रही हैं।

और, उस भूरेपन के भीतर एक ऐसी अव्यक्त निराशा और असीम करुणा छिपी हुई है कि देखकर आश्चर्य और कौतूहल होता है, साथ ही साथ बड़ी दया भी आती है। नियति ने निस्सन्देह उसे और उसके साथियों को धोखा दिया है, क्योंकि उनके गोरे शरीर भारतवर्ष की भयानक गरमी के लिये बने नहीं जान पड़ते।

कालपी के निकट पहुँचकर कोचवान ने घोड़ों की रास खींची। ग्रीष्म के प्रभाव से नगर के बाहर का पथ निर्जन बना हुआ है। दो एक नगर-निवासी आ-जा रहे हैं। चौपहिया गाड़ी और उसमें बैठे यात्रियों को देखकर वे ठिठक गये और कौतूहल-भरी दृष्टि से देखने लगे। कोचवान ने अँगोछे से अपना मुँह पोंछा, और आराम की सांस लेकर इतनी देर बाद बोला, 'बाप रे! दिन डूबने को आया, फिर भी आग बरस रही है। आज कहीं चैन भी मिलेगा! फिर धूल से भरी दाढ़ी और ढीले एवं फटे पायजामे को देखकर कहने लगा, 'कैसी कलन्दर जसी शक्ल बन गई है! झांसी से कालपी तक की सारी धूल मानो मेरे ही सिर पर आई है।'

एक भले नागरिक को पास गुज़रते देखकर उसने गाड़ी रोक और पूछा, 'क्यों साहब, यहां कहीं पानी भी मिलेगा?'

यात्री सिर उठा कर व्याकुल, शून्य दृष्टि से उस व्यक्ति को देखने लगे मानो सब उससे कुछ कहना चाहते थे।

नागरिक ने उत्तर दिया, 'क्यों नहीं' आगे कुँआं है, प्याऊ भी है।'

कोचवान ने आगे बढ़ने के उद्देश्य से घोड़ों की पीठ से चाबुक स्पर्श किया। यात्रियों पर दृष्टिपात करके नागरिक ने विस्मित भाव से पूछा, 'तुम्हें जाना कहां है?''

'कहाँ बताऊँ!' कोचवान को कदाचित् स्वयं ही अपने गन्तव्य स्थान का पता नहीं था, परन्तु उस व्यक्ति के सफ़ेद बाल और भद्र-ओचित वेश-भूषा देख कर वह बोला, 'जहां क़िस्मत ले जाये, मियाँ!'

भद्र पुरुष ने प्रश्न किया—'तो क्या करते हो भाईजी? आगे आराम नहीं करोगे? घोड़े भी इस लायक हैं नहीं कि आगे जायँ।

कोचवान बोला, 'आराम तो मैं खुद करना चाहता हूँ, मगर कहीं ठिकाने की जगह मिले, तब तो। इन अँगरेजों के पीछे बागी हैं। एक जगह थोड़ी रोटी ली, तब से बराबर चल रहा हूँ। आराम करना कैसा है, यहाँ दम के लिए भी नहीं ठहरा। आपको क्या बताऊँ साहब, कैसी मुसीबत में पड़ कर इन अँगरेजों को बचा पाया हूँ। [illegible] से [illegible] गया, वहाँ से कोंच, कोंच से [illegible] करूँ। बहुत कोशिश की कि कोई इन लोगों को अपने घर में छिपा ले, मगर जानबूझ कर कोई मुसीबत क्यों लेने लगा! जहाँ सुना कि इनके पीछे बागी हैं, झट से किवाड़ बन्द कर दिये। कल से बेचारों के मुँह में दाना नहीं गया। [illegible] सिर पर [illegible] है। प्यास से पानी पिया था। खाने को कहीं भी नसीब नहीं हुआ; [illegible] में कहीं गाड़ी रोकी है।'

कोचवान की लम्बी दाढ़ी और ढीला पायजामा देख कर उन सज्जन ने कहा, 'जी साहब, आपने बड़ी गलती की जो इन अँगरेजों को इस रास्ते से लाये। आपके लिए तो इन दिनों सब तरफ मुसीबत ही मुसीबत है। कहीं कुन्दन से बच कर आये हैं तो कहाँ आये हैं! कालपी आजकल बागियों का अड्डा हो रहा है। दो दिन से राव साहब यहीं किले में पड़े हैं। यदि आप सचमुच इन अँगरेजों को बचाना चाहते हैं, तो यहाँ से उलटे पैरों लौट जाइये। रात में कहीं रहिये, मगर बस्ती में मत जाइये।

कोचवान सहसा चौंक उठा। अपनी मौत की खबर पाकर भी शायद उसके मुँह का भाव इतना न बिगड़ता, जितना उन भद्र पुरुष के मुँह से उपर्युक्त समाचार सुन कर। उसे कालपी की स्थिति का पता नहीं था, 'भाई साहब, ये सात प्राणी इस वक्त मेरे लिए दुनियाँ की बड़ी से बड़ी नियामत से भी बढ़कर हैं, क्योंकि अपनी जान जोखिम में डाल कर मैं इन्हें बचा कर लाया हूँ। मगर आपने तो यह बुरी

सुनाई। रात के वक्त कहाँ जाऊँ? जङ्गल में तो रहूँगा नहीं। कोई सुभीते की जगह बताइये जहाँ ये रह सकें, और कुछ खाने-पीने को भी मिल सके। दो दिन हो गये, इनके मुँह में दाना नहीं गया।'

भद्र पुरुष कुछ विचलित-से होकर बोले, 'यह खूब रही, ख साहब, जो रास्ता बतावे, वही आगे हो। मैं तुम्हें कौन-सा स्थान बत दूँ? यहाँ तो कोई धर्मशाला भी नहीं है। एक है, मगर वहाँ तुम हिफ़ाज़त से रहोगे, यह कैसे विश्वास दिला सकता हूँ।'

कोचवान गाड़ी से नीचे उतर आया और भद्र पुरुष का हाथ पकड़ कर कातर स्वर में बोला, 'इन अँगरेज़ों पर रहम खाइये, भाई साहब! बड़ा पुण्य होगा, इन्हें आप बचा लेंगे तो। कोई तरकीब सोचिये कि ये ख़ैरियत से रह सकें।'

भद्र सज्जन कोचवान के मुँह की ओर देख कर बोले, 'भाई मैं क्या तरकीब सोचूँ?

'तरकीब तो आसान है अगर, आप चाहें। आज रात के लिए इन्हें आप अपने घर में जगह दे दीजिये।' कोचवान ने तुरन्त अपनी बात कह डाली।

भद्र पुरुष अवाक् होकर उसे देखने लगे। क्षण भर के लिए स्वयं यह विचार उनके हृदय में उठा था कि इन विपद्ग्रस्त अँगरेज़ों को अपने घर ले चलें, परन्तु यह विचार तुरन्त ही विलीन हो गया। उन्होंने कहा, 'यह तो बहुत मुश्किल है।'

कोचवान बोला, 'नहीं, जनाब, कुछ मुश्किल नहीं। पुण्य का काम करने में भी कभी किसी को कठिनाई हुई है? क़सम से कहता हूँ, किसी को कानों-कान ख़बर नहीं होगी। अँधेरा हो ही चला है। दो-तीन दिन के लिए अपने घर का कोई अँधेरा कमरा ख़ाली कर दीजिये।'

'सो तो मेरी हवेली में ऐसे कई कमरे हैं,' भद्र सज्जन बोले।

'बस-बस, किसी एक में छिपा दीजिये। ईश्वर आपको चिरायु करे। ज़रा ख़याल कीजिये इनकी मुसीबत का। दो दिन से मौत

सुनाई । रात के वक्त कहाँ जाऊँ ? जङ्गल में तो रहूँगा नहीं । कोई सुभीते की जगह बताइये जहाँ ये रह सकें, और कुछ खाने-पीने को भी मिल सके । दो दिन हो गये, इनके मुँह में दाना नहीं गया ।'

भद्र पुरुष कुछ विचलित-से होकर बोले, 'यह खूब रही, साहब, जो रास्ता बतावे, वही आगे हो । मैं तुम्हें कौन-सा स्थान बता दूँ ? यहाँ तो कोई धर्मशाला भी नहीं है । एक है, मगर वहाँ तुम हिफ़ाज़त से रहोगे, यह कैसे विश्वास दिला सकता हूँ ।'

कोचवान गाड़ी से नीचे उतर आया और भद्र पुरुष का हाथ पकड़ कर कातर स्वर में बोला, 'इन अँगरेज़ों पर रहम खाइये, भाई साहब! बड़ा पुण्य होगा, इन्हें आप बचा लेंगे तो । कोई तरकीब सोचिये कि ये खैरियत से रह सकें ।'

भद्र सज्जन कोचवान के मुँह की ओर देख कर बोले, 'भाई मैं क्या तरकीब सोचूँ ?

'तरकीब तो आसान है अगर, आप चाहें । आज रात के लिए इन्हें आप अपने घर में जगह दे दीजिये ।' कोचवान ने तुरन्त अपनी बात कह डाली ।

भद्र पुरुष अवाक् होकर उसे देखने लगे । क्षण भर के लिए स्वयं यह विचार उनके हृदय में उठा था कि इन विपद्ग्रस्त अँगरेज़ों को अपने घर ले चलें, परन्तु यह विचार तुरन्त ही विलीन हो गया । उन्होंने कहा, 'यह तो बहुत मुश्किल है ।'

कोचवान बोला, 'नहीं, जनाब, कुछ मुश्किल नहीं । पुण्य का काम करने में भी कभी किसी को कठिनाई हुई है ? क़सम से कहता हूँ, किसी को कानो-कान खबर नहीं होगी । अँधेरा हो ही चला है । दो-तीन दिन के लिए अपने घर का कोई अँधेरा कमरा खाली कर दीजिये ।'

आपकी मर्ज़ी हो, तो स्त्रियां भी बाहर आ जायेंगी । अभी प्रबन्ध किये देता हूँ ।

दूसरा आगन्तुक बोला अँगरेज़ हवेली में नहीं हैं, यह तो मान लिया, मगर यह चौपहिया गाड़ी तो उन्हीं अङ्गरेज़ों की है, जो परसों उरई से यहां भाग कर आये हैं। इसके पहले गाड़ी यहां नहीं थी। क्या कहते हो ?' और वह तीखी नज़र से लठैत के मनोभावों को ताड़ने का प्रयत्न करने लगा ।

लठैत सचमुच कुछ अचकचा गया । करीम ने तुरन्त उत्तर दिया—'हरजूमल ने अभी ख़रीदी है कानपुर के एक व्यापारी से ।'

अगान्तुक ठहाका मारकर हँस पड़ा— ठीक कहते हो ख़ां साहब हरजूमल ने कानपुर या झाँसी के जिन व्यापारियों से यह सौदा किया है, हम उन्हीं को चाहते हैं। सीधे-सीधे बता दो कहाँ हैं, वरना तुम्हारी दाढ़ी की आज ख़ैरियत नहीं ।'

तीनों लठैत एक क़दम आगे बढ़ आये । एक ने अपना लट्ठ संभाल कर कहा —'देखिये साहब, ज़बान क़ाबू में रखिये । आपको राव साहब का आदमी समझ कर हमने कुछ नहीं कहा, वरना हमारे मालिक की भी इतनी इज़्ज़त है कि उनके नौकरों से आप तू-तड़ाक करके नहीं बोल सकते । यहां अँगरेज़-वँगरेज़ नहीं हैं । राव साहब से कह दीजिये ।'

पहला अगान्तुक कड़क कर बोला—हैं या नहीं यह अभी मालूम हुआ जाता है ।' उसने मुंह से एक विशेष संकेत किया । गली में छिपे हुए बीस-पचीस जवान सामने आगये । करीम और उन तीनों लठैतों के नेत्रों के समक्ष मानों अँधेरा छा गया । उसी पहले लट्ठबन्द ने कहा —'अब क्या कहते हो ?'

हरजूमल के एक लठैत ने जवाब दिया —जो पहले कहा था ।'

उसने एक बलवाई को संकेत करके कहा—'रज्जब, अपने पास इतना वक्त तो है नहीं कि हरजूमल की हवेली की भूलभुलैयां में घंटों ठोकरें खाते फिरें । यह देखो, उस गाड़ी के पीछे बहुत-सी घास रक्खी

झुलसने लगे, और उस वृक्ष के कोटरों में निवास करने वाले प
त्रस्त-व्यस्त हो कर इधर-उधर उड़ गये। नीचे से ऊपर तक धुएँ
घटाटोप छा गया। चार में से तीन व्यक्तियों के अधजले शरीर रस्सी
जल जाने के कारण प्रज्वलित घास के ढेर में गिर कर भुनने लगे।
मगर उन्होंने मुँह से 'उफ़' नहीं की।

करीम अब भी लटका हुआ था। विद्रोही अब भी इस क्रू
लीला पर अन्तिम पटाक्षेप करके ही वहाँ से जाना चाहते थे। उन्हें
अन्त तक यही आशा थी कि यह बूढ़ा मुसलमान अवश्य कुछ भेद
बतायेगा। परन्तु करीम कह रहा था—"मैं कुछ नहीं जानता।"

करीम के मस्तक के बाल चिट-चिट करके जल उठे और उनकी
दुर्गन्ध से आस-पास का वायु व्याकुल हो उठा।

धुआं हवेली की सबसे ऊंची मन्ज़िल तक पहुंच चुका था। उस
मन्ज़िल के एक सबसे छोटे झरोखे में किसी के दो भूरे नेत्र थोड़ी देर
तक चमक कर फिर अन्तर्धान हो गये। जिस अंधेरी कोठरी का यह
झरोखा है, उसके द्वार का पता नहीं चलता। उसमें सात प्राणी बैठे
मानों चारों ओर यमदूत की परिछाइयाँ देख रहे हैं। उनमें से एक
ने झरोके से सिर अलग करके जीवनमृत-जैसे व्यक्ति के स्खलित
स्वर में कहा— 'बाग़ी हैं।'

सुनते ही उस अँधेरे में सबके चेहरे स्याह पड़ गये। 'करीम
को जला रहे हैं।'

'जला दिया ?'

'हाँ'।

'वह कुछ कहेगा तो नहीं, धोखा तो नहीं देगा ? हे भगवान,
रक्षा करो, रक्षा करो।'

'नहीं, वह धोखा नहीं देगा।'

वे दोनों भूरे नेत्र फिर झरोखे के पास आ लगे।

उसी समय करीम की निर्जीव-प्राय, अधजली देह घास के ढेर
पर गिर पड़ी। करीम के प्राण-पखेरू उड़ गये थे।

अपना-अपना भाग्य

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की बेंच पर बैठ गये।

नैनीताल की सन्ध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे-से, भाप-से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अँधियारी से रंग कर कभी वे पीले दीखते, कभी सफेद और फिर ज़रा देर में अरुण पड़ जाते, जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलो वाला मैदान फैला था। सामने अंगरेज़ों का एक प्रमोद-गृह था, जहां सुहावना, रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक-दो अंग्रेज़ यात्रियों को लेकर, इधर से उधर खेल रही थीं और कहीं कुछ अंग्रेज़ एक-एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी सुई-सी शक्ल की डोंगियों को मानों शर्त बाँधकर सरपट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बंसी पानी में डाले धैर्य के साथ एकाग्र होकर मछली-चिन्तन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लान में बच्चे किलकारियाँ भरते हुए हाकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली-गलौच भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना, वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगाकर मानों ख़तम कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का ख़याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की संपूर्ण सचाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरल प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था न छोर। यह प्रवाह कहाँ जा रहा था और कहाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है? सब उमर के,

सब तरह के होंगे लगते थे। मानों मनुष्यता के नमूने का बाजार, सजकर, सामने से इठलाता निकला चला जा रहा हो।

अधिकार-गर्व से सने अँगरेज चलते थे, और सिपाहियों से बड़ी तोंदों को थाम सकने से पहाड़ी लगते थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचल कर शून्य बना लिया था, और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये थे।

लम्बे, मोटे, दुबले, नाटे, गोरे, लाल-लाल अँगरेज बच्चे थे और चौड़ी-चौड़ी आँखें चढ़ाये, जिनकी उँगली पकड़कर चलते हुए अपने हिन्दुस्तानी नौनिहाल भी थे।

अँगरेज पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ आ रहे थे, हँस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुजुर्गी को अपने चारों तरफ लपेटे धन-सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अँगरेज रमणियाँ थीं, जो धीरे नहीं चल सकती थीं, तेज चलती थीं। उन्हें न चलने में रुकावट आती थी, न हँसने में लाज आती थी। फ़ैशन के नाम पर घोड़ों पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़े के मात्र की भाग जरा भी होते ही, किसी हिन्दुस्तानी पर भी कोड़े फट-कार सकती थीं। वह, दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निश्शंक, निरापद, इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर से चली जा रही थीं।

उधर हमारी भारत की कुल-वधुएँ, सड़क के बिलकुल किनारे-किनारे, दामन बचाती और सम्हालती हुई, साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमट कर लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर, सहमी-सहमी धरती में आँखें गाड़े, कदम-कदम बढ़ रही थीं।

[२]

घण्टे के घण्टे सरक गये। अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल

सफ़ेद होकर जम गये । मनुष्यों का यह ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्के-दुक्के आदमी सड़क पर छतरी लगा कर निकल रहे थे। हम वहीं-के-वहीं बैठे थे । सरदी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिर कर देखा। वह लान बर्फ़ की चादर की तरह बिलकुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था।

सब सन्नाटा था । नैनीताल की बिजली की रोशनी दीप-मालिका-सी जगमगा रही थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी। और दर्पण-सा कांपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह तल उन प्रतिबिम्बों को सौ-गुना—हज़ार-गुना करके उनके प्रकाश को मानों एकत्र और जमाकर व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशनी तारों-सी जान पड़ती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सबको ढक दिया। रोशनी मानों मर गई। जगमगाहट लुप्त हो गई। वह काले-काले भूत से पहाड़ भी उस सफ़ेद परदे के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दिखने लगी। मानों यह घनीभूत प्रलय था। सब कुछ इस घनी, गहरी सफ़ेदी में दब गया, जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैल कर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया। ऊपर, नीचे, चारों तरफ़ वह निर्भेद्य, सफ़ेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहारा हमने कभी न देखा था । टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिलकुल निर्जन था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उस बृहदाकार, शुभ्र शून्य में कहीं से ग्यारह बार टन-टन हो उठा जैसे, कहीं दूर क़ब्र में से आवाज़ आ रही हो।

हम अपने-अपने होटलों के लिये चल दिये।

रास्ते में मित्रों का होटल मिला । दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गये । हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

सफ़ेद होकर जम गये । मनुष्यों का यह ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्के-दुक्के आदमी सड़क पर छतरी लगा कर निकल रहे थे। हम वहीं-के-वहीं बैठे थे । सरदी-सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिर कर देखा। वह लान बर्फ़ की चादर की तरह बिलकुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था।

सब सन्नाटा था। नैनीताल की बिजली की रोशनी दीप-मालिका-सी जगमगा रही थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी। और दर्पण-सा कांपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह तल उन प्रतिबिम्बों को सौ-गुना—हज़ार-गुना करके उनके प्रकाश को मानों एकत्र और जमाकर व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशनी तारों-सी जान पड़ती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सबको ढक दिया। रोशनी मानों मर गई। जगमगाहट लुप्त हो गई। वह काले-काले भूत से पहाड़ भी उस सफ़ेद परदे के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दिखने लगी। मानों यह घनीभूत प्रलय था। सब कुछ इस घनी, गहरी सफ़ेदी में दब गया, जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैल कर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया। ऊपर, नीचे, चारों तरफ़ वह निर्भेद्य, सफ़ेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहारा हमने कभी न देखा था। टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिलकुल निर्जन था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उस बृहदाकार, शुभ्र शून्य में कहीं से ग्यारह बार टन-टन हो उठा जैसे, कहीं दूर क़ब्र में से आवाज़ आ रही हो।

हम अपने-अपने होटलों के लिये चल दिये।

रास्ते में मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

पास की चुंगी की लालटेन के छोटे से प्रकाश-वृत्त में देखा—कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैले से काला पड़ गया है, आंखें अच्छी, बड़ी पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियां खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न एकाकी दुनियां। वह बस अपने निकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज़ दी—"ए!"

उसने अपनी सूनी आंखें फाड़ दीं।

"दुनियां सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है?"

बालक मौन-मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

"कहां सोएगा?"

"यहीं कहीं।"

"कल कहाँ सोया था?"

"दुकान पर।"

"आज वहां क्यों नहीं?"

"नौकरी से हटा दिया।"

"क्या नौकरी थी?"

"सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।"

"फिर नौकरी करेगा?"

"हाँ..."

"बाहर चलेगा?"

"हां।"

"आज क्या खाना खाया?"

"कुछ नहीं।"

"अब खाना मिलेगा?"

वकील लोग होटल के कमरे से उतर कर आये। काश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोज़े-चढ़े, पैरों में चप्पलें थीं। स्वर में हलकी झुंझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

"ओ-हो, फिर आप! कहिये?"

"आपको नौकर की ज़रूरत थी न? देखिये यह लड़का है।"

"कहां से लाये?—इसे आप जानते हैं?"

"जानता हूँ—यह बेईमान नहीं हो सकता।"

"अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुण छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं—उठा लाये कहीं से—लो जी, यह नौकर लो।"

"मानिये तो; यह लड़का अच्छा निकलेगा।"

"आप भी...जी, बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाये और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाये।"

"आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूं!"

"मानें क्या खाक?—आप भी...जी अच्छा मज़ाक करते हैं। अच्छा, अब हम सोने को जाते हैं।"

और वह चार रुपये रोज़ के किरायेवाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गये।

[३]

वकील साहब के चले जाने पर, होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला; पर झट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर वे मेरी ओर देखने लगे।

"क्या है?" मैंने पूछा।

"इसे खाने के लिये कुछ देना चाहता था"—अंग्रेजी में मित्र ने कहा—"मगर दस-दस के नोट हैं।"

"नोट ही शायद मेरे पास हैं;—देखूं?"

सचमुच मेरी जेब में भी नोट ही थे। हम अंग्रेजी में [illegible] [illegible] बीच-बीच में कड़कड़ा उठते थे। कड़ाके का जाड़ा [illegible]

वकील लोग होटल के कमरे से उतर कर आये। काश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोज़े-चढ़े, पैरों में चप्पलें थीं। स्वर में हलकी झुंझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

"ओ-हो, फिर आप! कहिये?"

"आपको नौकर की ज़रूरत थी न? देखिये यह लड़का है।"

"कहां से लाये?—इसे आप जानते हैं?"

"जानता हूँ—यह बेईमान नहीं हो सकता।"

"अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुण छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं—उठा लाये कहीं से—लो जी, यह नौकर लो।"

"मानिये तो; यह लड़का अच्छा निकलेगा।"

"आप भी...जी, बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाये और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाये।'

"आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूं!"

"मानें क्या खाक?—आप भी...जी अच्छा मज़ाक करते हैं। अच्छा, अब हम सोने को जाते हैं।"

और वह चार रुपये रोज़ के किरायेवाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गये।

[३]

वकील साहब के चले जाने पर, होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला; पर झट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर वे मेरी ओर देखने लगे।

"क्या है?" मैंने पूछा।

"इसे खाने के लिये कुछ देना चाहता था"—अंग्रेज़ी में मित्र ने कहा—"मगर दस-दस के नोट हैं।"

"नोट ही शायद मेरे पास हैं;—देखूं?"

सचमुच मेरी जेब में भी नोट ही थे। हम अंग्रेज़ी में बोलने लगे। [illegible] के दांत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सरदी थी।

में नहीं आया। हम अपनी नैनीताली सैर खुशी-खुशी खतम कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाये बैठे रहने की ज़रूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला—"पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे—पेड़ के नीचे ठिठुर कर मर गया।

मरने के लिये उसे वही जगह, वही दस बरस की उमर और वही, काले चिथड़ों की कमीज़ मिली। आदमियों की दुनियां ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बतलाने वालों ने बताया कि गरीब के मुंह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर, बरफ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी! मानों दुनियां की बेहयाई ढँकने के लिये प्रकृति ने शव के लिये सफ़ेद और ठण्डे कफ़न का प्रबन्ध कर दिया था।

सब सुना और सोचा—"अपना-अपना भाग्य!"

श्रीमती सत्यवती मलिक

(जन्म-सन् १६०५)

श्रीमती सत्यवती मलिक जी के पिता श्री लाला चिरंजीवलाल जी श्रीनगर के सुप्रसिद्ध नागरिक हैं।

श्रीमती जी एक सुसंस्कृत महिला, प्रगतिशील साहित्यक और सफल कलाकार हैं। आप बंगला भी अच्छी जानती हैं। आपको चित्रकला का बड़ा शौक है। श्रीमतीजी की कहानियों तथा स्केचों का संग्रह 'दो फूल' है।

गार्हस्थ्य जीवन के माधुर्य की जैसी अद्भुत छटा इनकी रचनाओं में दीख पड़ती है, वैसी शायद ही किसी-हिन्दी-लेखिका ने चित्रित की हो। इनकी रचनाओं में मातृप्रेम की जो निर्मल सरिता प्रवाहित हो रही है, वह पाठक को विभोर कर देती है। प्रकृति-सौंदर्य-चित्रण में यह अत्यन्त पटु हैं।

सन्मुख आकर उसके रोम-रोम को पुलकित कर रही है। कभी ऐसा भी लगने लगता है, मानो सामने दीवार पर लटकी हुई नरेन्द्र की तसवीर हंसकर बोल उठेगी। सावित्री की आंखों में प्रेमाश्रु छलक उठे। तितली का एक पंख काढ़ा जा चुका है, किन्तु दूसरा आरम्भ करने से पूर्व ही कमल की सिसकियों और आंसुओं ने सावित्री को वहां से उठने को विवश कर दिया।

स्कूल की चीज़ों को बेग में डालते हुए निर्मला के निकट खड़े होकर सावित्री ने कड़क कर कहा, "निर्मल, तुझे शर्म नहीं आती क्या? इतनी बड़ी हो गई है! कमल तुझसे पूरे चार वर्ष छोटा है। किसी चीज़ को उसे छूने तक नहीं देती। हर घड़ी वह बेचारा रोता रहता है। अगर उसने तेरे पेन्सिल-बक्स को तनिक देख लिया, तो क्या हुआ?"

निर्मला सिर नीचा किये मुस्करा रही थी। यह देखकर सावित्री का पारा और भी अधिक चढ़ गया। उसने ऊंचे स्वर में कहना शुरू किया, "रानी जी, बड़े होने पर पता चलेगा, जब इन्हीं दुर्लभ सूरतों को देखने के लिए भी तरसोगी। भाई-बहन सदा साथ-साथ नहीं रहते।'

मां की झिड़कियों ने बालिका के नन्हें मस्तिष्क को एक उलझन में डाल दिया। आश्चर्यान्वित हो वह केवल मां के क्रुद्ध चेहरे की ओर एक स्थिर गम्भीर, कुतूहलपूर्ण दृष्टि डालकर रह गई।'

करीब आध घण्टा बाद किंचित् उदास-सा मुख लिये निर्मला जब कमल को साथ लेकर स्कूल चली गई, तब सावित्री को अपनी सारी वक्तृता सारहीन प्रतीत होने लगी। सहसा उसे याद आने लगी कुछ वर्ष पूर्व की एक बात, तब वह नरेन्द्र से क्यों रूठ गई थी? छिः! एक तुच्छ-सी बातपर....किन्तु आज जो बात तुच्छ जान पड़ती है, उन दिनों उसी तुच्छ, निकृष्ट, ज़रा-सी बात ने इतना रूप क्यों धारण कर लिया था, जिसके कारण भाई-बहन

कहते हुए भीतर-ही-भीतर सावित्री को कुछ झिझक-सी हो आई।

❀ * ❀

"हम दोनों सीता के घर से जुलूस देखेंगे मा, अच्छा।"—कमल ने विनम्र स्वर में अनुमति चाही।

"नहीं जी, क्या अपने घर से दिखाई नहीं पड़ता?" दरवाजे की ओट में निर्मला खड़ी थी। "कैसी चालाक लड़की है—इसी ग़रीब को आगे करती है, जब ख़ुद कुछ कहना होता है। जाओ, जाना हो तो।" सावित्री नें झुँझला कर उत्तर दिया।

पांच बजे मुहर्रम का जुलूस निकलने वाला था। पल-भर में चौराहे पर सैकड़ों मनुष्यों की भीड़ इकट्ठी हो गई। सावित्री का ध्यान कभी काले-हरे रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र पहने जन-समूह की ओर और कभी जुलूस के कारण रुकी हुई मोटर-गाड़ियों में बैठे हुए व्यक्तियों की ओर अनायस ही खिंच रहा था। और इधर बालिका निर्मला के होश-हवास एकाएक गुम-से हो गये जब उसे सारे घर में कमल की परछाईं तक नज़र न आई। व्याकुल-सी हो, वह कमरे से दूसरे में और फिर बरामदे में पंख-हीन पक्षी की नाईं फड़-फड़ाती हुई दौड़ने लगी। उसकी आंखों के आगे अन्धेरा-सा छा गया। उसे सब कुछ सुनसान-सा प्रतीत होने लगा। वह मां से कई बार छोटे बच्चों के भीड़-भाड़ में खो जाने का हाल सुन चुकी है। आह......उसका भैया......कमल......वह क्या करे?

नीचे की सड़क पर भांति-भांति के रङ्ग-बिरंगे खिलौने, नये नये रंग के गुब्बारे, कागज़ के पंखे, पतंग और भिन्न-भिन्न प्रकार के सुर निकालते हुए बाजे लाकर बेचने वालों ने बाल-जगत के प्रति एक ... जाल-सा बिछा रखा है। कुछ दूर से मानो नेपथ्य में से ...-ढमाढम ढोल-बाजों की ध्वनि बजती आ रही है। निर्मला

[illegible]

गुलाब

श्रीनगर से जो सड़क शाहीबाग़ की तरफ़ गई है, वह ऊँची-नीची चोटी पर एक सुन्दर पहाड़ी के दामन में इस तरह लेटी हुई है, जैसे महादेव की जटा में साँप लिपटा हुआ हो। सड़क के आस-पास ज़्यादा आबादी नहीं। सिर्फ़ चिनार और सफ़ेदा के घने पेड़ों की छाया में कहीं कश्मीरी किसानों के पाँच-पाँच, सात-सात लकड़ी के बने-हुए दुमंज़िले मकान हैं। सड़क रात के समय बिल्कुल सुनसान पड़ी रहती है। दिन में कभी-न-कभी कोई-कोई भोंपों-भोंपों करती हुई मोटर या लारी बड़ी तेज़ी से इस सड़क पर से निकल जाती है। किसी-किसी समय लकड़ी के भारी पहियों की सुस्त चुरचुराहट के साथ मस्त और रसिक आवाज़ में गाते हुए गाड़ीवानों की आवाज़ भी इस मार्ग के सन्नाटे को भंग करती है। इसी सड़क पर हुस्मत नाम का एक बूढ़ा काश्मीरी सन्नाटे में दिन-भर अकेला बैठा रह कर मुसाफ़िरों का इन्तज़ार किया करता है। कोई दे चाहे न दे—वह सब के लिये अपने खुदा से छोटी-मोटी दुआएँ माँगता है। चिनार के एक पुराने वृक्ष की छाया में, और एक ही स्थान पर वह लगातार न जाने कितने बरसों से बैठा

हुआ दिखाई देता है। जिस तरह से सड़क के किनारे के पुराने वृक्षों और बड़ी-बड़ी चट्टानों के सम्बन्ध में किसी को ज्ञात नहीं कि वे कब से वहां इस तरह मौजूद हैं, और उनको देखने का सब को अभ्यास हो गया है उसी तरह से वह बूढ़ा भी, न जाने कितने बरसों से आशीर्वाद देने वाले एक स्थाणु के समान ठीक एक ही स्थान पर जम कर बैठा हुआ दिखाई देता है, और राहगीरों को उसे इसी रूप में देखने का अभ्यास हो गया है।

(१)

विन्ध्येश्वरी को तीर्थ-यात्रा का बेहद शौक था। बालपन की चंचलता के दिनों में भी उसमें असाधारण श्रद्धा के बीज मौजूद थे। पण्डितों के मुंह से देवी-देवताओं के कारनामों की कथा वह बड़े चाव और श्रद्धा के साथ सुनती। वह धनी परिवार की थी इसलिये प्रायः प्रतिवर्ष ही उसे किसी-न-किसी नए तीर्थ के दर्शन करने का अवसर मिल जाता था। उस का विवाह भी एक सम्पन्न घर में हुआ था। पतिदेवता कालेज की शिक्षा पाये हुए थे, यद्यपि उन्हों ने कोई इम्तहान पास नहीं किया था। उन का नाम रामप्रताप था। औसत दर्जे के धनी आदमियों से न वह किसी दर्जे अच्छे थे और न बुरे। देवी-देवताओं में उन्हें श्रद्धा नहीं थी, मगर कोई विरोध का भाव भी नहीं था। वह युक्तप्रान्त के एक वैभवशाली ज़मींदार थे। काम-काज या नौकरी-चाकरी की झंझटें उन्हें नहीं झेलनी पड़ती थीं। अपनी ज़मींदारी के सम्बन्ध में भी उन्हें बहुत दिलचस्पी नहीं थी। ज़मींदारी का अधिकांश बोझ खानदान में चले आ रहे एक पुराने कारिन्दे पर था, इसलिए विन्ध्येश्वरी के साथ यात्रा पर जाने को साल भर में उन्हें काफ़ी फ़ुरसत मिल जाती थी। उनका अपना उद्देश्य तीर्थयात्रा तो न था, मगर किसी तीर्थ पर जाकर पाण्डों और पुरोहितों को कुछ दान-दक्षिणा दे देने में, या नदी अथवा तालाब में दो-एक गोते लगा लेने में उन्हें कोई हानि भी प्रतीत नहीं होती थी। लगे-हाथ यदि धर्मराज के बैंक में वह अपने नाम

अभाग्य से इन्हीं दिनों रामप्रताप के कारिन्दे का जमींदार के एक काम के सम्बन्ध में एक आवश्यक तार आया, जिस में उन्हें एकदम लौट आने की प्रेरणा की गई थी। रामप्रताप अपनी कन्या और पत्नी को ईश्वर के भरोसे छोड़ कर उसी दिन अपने गांव के लिए रवाना हो गये। अपनी जमींदारी में पहुँचने के सिर्फ एक सप्ताह बाद ही उन्होंने अखबार में पढ़ा कि इस वर्ष काश्मीर की घाटी में भयङ्कर बाढ़ आ जाने के कारण अमरनाथ के सैंकड़ों यात्री पानी में डूब गये हैं। रामप्रताप के होशो-हवास जाते रहे। अपनी जमींदारी की समस्या को बीच ही में छोड़कर वह काश्मीर के लिए रवाना हो गए।

अमरनाथ की गुफा से सिर्फ अठाईस मील नीचे, पहलगांव में पहुंच कर रामप्रताप का विन्ध्येश्वरी से तो साक्षात् हो गया, मगर वह अपनी प्यारी पुत्री का मुँह न देख सके। विन्ध्येश्वरी ने रो-रो कर अपने स्वामी को बताया कि पहाड़ की ऊँचाई पर के एक पड़ाव में उनकी वह नन्हीं-सी बालिका अपनी धाय के साथ पानी के प्रवाह में बह गई। विन्ध्येश्वरी ने उसे डूबते हुए स्वयं तो नहीं देखा, परन्तु उसके नौकर का यही कहना है। विन्ध्येश्वरी के भरसक प्रयत्न करने पर भी उन दोनों में से किसी की लाश तक भी नहीं पाई जा सकी।

(२)

सितम्बर महीने की एक सांझ का समय था। आज दिन भर से आसमान में बादल घिर रहे थे। पिछले दिनों बहुत अधिक वर्षा होते रहने के कारण काश्मीर में सरदी बहुत अधिक बढ़ गई थी। बूढ़ा हुक्मत सिकुड़ कर चुपचाप अपनी जगह बैठा था। उसे सरदी सता रही थी; मगर सरदी से बचने का उसके पास कोई साधन नहीं था। इसी समय बिजली की एक प्रबल रेखा आसमान-भर में इस तरह घूम गई, जैसे भगवान ने किसी बड़े ब्लैकबोर्ड पर चाक से [illegible] कर रेखाओं का परिहास किया हो। इसके आगे ही [illegible]

बुड्ढे ने उन से अपनी कांगड़ी* भरी और लेटकर सुस्ताने लगा।

इसी समय फ़कीर को सड़क पर से किसी बच्चे के चीखने की आवाज़ सुनाई दी। वर्षा पड़ने की ऊँची आवाज़ के कारण यह चीख बहुत स्पष्ट नहीं थी, फिर भी उसमें अत्यधिक भयपूर्ण करुणा उत्पन्न करने की पूरी शक्ति विद्यमान थी। यह चिल्लाहट क़रीब-क़रीब उसी जगह से आ रही है जहाँ वर्षों से बैठा रहकर वह राहगीरों से भीख मांगा करता है। फ़कीर चौंक पड़ा। वह नेकचलन और रहमदिल था। उसने इस बात की परवाह नहीं की कि उस पर भी कोई आफ़त आ सकती है। वह उठा, और उसने अपनी लकड़ी सँभाली। अभी रात का-सा अंधेरा नहीं हुआ था। काले-काले बादलों ने सितम्बर महीने के इस सायंकाल को रात के समान अवश्य बना रखा था, मगर अभी तक कुछ भी दिखाई न देने की नौबत नहीं आई थी।

सड़क के निकट पहुंच कर उसने देखा कि दो दुर्जन सड़क के किनारे खड़े होकर एक छोटे-से बच्चे के कान खींच रहे हैं। निकट पहुंच कर हुरमत ने एक बार बड़े ज़ोर से खुदा का नाम लिया, और इसके बाद अस्पष्ट काश्मीरी भाषा में वह इस तरह चिल्लाने लगा जैसे वह किसी को बुला रहा हो। दोनों दुष्ट हुरमत को इस तरह चिल्लाता हुआ देखकर भयभीत हो गए, और उस बच्चे को वहीं छोड़कर भाग गए। बूढ़ा फ़कीर दाएँ हाथ में लाठी को मज़बूती से थाम कर सड़क पर उतरा। उसने निकट आकर देखा कि बच्चा तीन-चार वर्ष की एक बहुत ही सुन्दर बालिका है।

बालिका अभी तक उसी तरह ऊँची आवाज़ में रो रही थी। फ़कीर ने पुचकार कर उसे अपनी गोद में उठा लिया, और अपनी झोंपड़ी की तरफ़ ले चला। उसने देखा कि वर्षा के कारण कन्या के सब कपड़े बिलकुल गीले हो गए हैं, और वह सरदी के मारे कांप रही है। शीघ्रता से उसे झोंपड़ी में ले जाकर फ़कीर ने उसके गीले

*मिट्टी का कश्मीरी बरतन, जिसमें आग भर कर कश्मीरी लोग अपने कपड़ों के अन्दर कर लेते हैं।

गई। बड़ी ही मधुर और अबोध मुसकराहट के साथ कुटिया के बाहर की तरफ उँगली उठा कर वह बोली—"बिल्ली" !

मालूम नहीं कि बूढ़े फ़कीर ने कभी ब्याह भी किया था या नहीं, अथवा कभी उसकी कोई सन्तान भी रही थी या नहीं, परन्तु इतना ज़रूर मालूम है कि उसके अबतक के जीवन में बच्चे उसके लिए आफ़त के पुतले बने हुए थे। बूढ़ों के साथ शरारत करने में बच्चों को विशेष आनन्द आता है। यह बूढ़ा फ़कीर भी आसपास के किसान बालकों के उपद्रवों से बरी नहीं था। कभी कोई बच्चा उसकी लाठी छीनकर ले जाता था, कभी कोई उस पर कङ्कर फेंकता था। कभी-कभी बच्चे एक साथ मिल कर उसे चिढ़ाया भी करते थे, 'बुड्ढा!' परन्तु आज एक अबोध और सुन्दरतम बालिका को बिलकुल अपनी दृष्टि से देखने का उसे पहली बार अवसर मिला। बूढ़ा फ़कीर वात्सल्य प्रेम के इस अनोखे आनन्द में मग्न हो गया।

(३)

बूढ़े फ़कीर ने बहुत सोच-विचार कर इस बालिका का नाम रक्खा 'गुलाब'। बूढ़े को मालूम नहीं था कि गुलाब शब्द पुंलिंग है या स्त्रीलिंग, यह शब्द चाहे किसी भी लिंग का क्यों न हो, परन्तु बूढ़े हुक्मत को सुन्दरतम फूल के समान इस बालिका के लिए 'गुलाब' से बढ़कर कोई उपयुक्त नाम नहीं सूझा।

हुक्मत के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन आ गया। उसे अनुभव हुआ कि गुलाब किसी बहुत बड़े घराने की कन्या है, और उसे मैला रहने की आदत नहीं है। उसने साबुन खरीदकर अपने कम्बल और एक फटी हुई चादर को धो डाला। अपने जीवनभर के परिश्रम से उसने जो थोड़े-बहुत रुपये जमा किए थे, उन्हें अब वर्षों के बाद हवा लगने लगी। बालिका के पैर नंगे थे, उन्हें इन रुपयों के प्रताप से ढांक दिया गया। उसके लिये अब गाय का शुद्ध घी खरीदा जाने लगा। बूढ़े ने स्वयं भी अब कुछ साफ़ रहना शुरू किया।

फ़कीर का काम अब भी भीख मांगना है। प्रतिदिन अपने उसी

स्थान पर बैठकर भीख माँगता है, मगर जब वह अपना पेट पालने लायक अन्न भी नहीं पाता। तब वह सभी राहगीरों के सामने बहुत अधिक गिड़गिड़ाता है। इसके लिए [illegible] वह कुछ भी कह देता है, और कभी-कभी तो तेज़ भागती हुई लारियों के पीछे दौड़ने का साहस तक भी करता है। इतने इतना प्रयत्न करने पर भी जब अधिक राहगीर उसे कुछ नहीं देते, बल्कि उस पर नाराज़ होते हैं, तो भी वह उन्हें दुआएँ ही देता है, मगर बूढ़े की दुआएं देते हुए उस पर कोई इन्कार-भरी भावना [illegible] नहीं होती। हुकमत जिस स्थान पर बैठकर भीख माँगता है, उससे थोड़ी ही दूरी पर, पत्थरों और [illegible] के बने हुए एक स्थान पर बैठकर यह डेढ़ वर्ष की बालिका अपने में मस्त होकर खेला करती है। बूढ़े ने उसे दो-तीन लकड़ी के [illegible] खिलौने खरीद दिए हैं। वह उन्हीं में मस्त रहती है। बीच-बीच में अपना खेल बन्द करके वह सड़क पर तेज़ी से आ-जा रही [illegible] की तरफ आँख उठाकर देख भी लेती है, मगर आश्चर्य यह है कि इस ज़रा-सी बालिका के लिये मोटर कोई विशेष कौतूहल की चीज़ नहीं मालूम होती।

गुलाब बहुत कम बोलती है। वह रोती भी नहीं। बूढ़ा फ़क़ीर हर समय उसे अपनी नज़र में रखता है। उसके दिल में इस नन्ही-सी बालिका ने एक नया स्रोत खोल दिया है। बीसियों साल से जो दुनियां उसकी आंखों में बिल्कुल बिसर चुकी थी, वह अब फिर से नये रूप में दिखाई देने लगी। यदि कभी खेलते-खेलते बालिका थोड़ा-सा इधर-उधर हट कर एक मिनट के लिए भी किसी चट्टान की ओट में हो जाती, तो बूढ़े हुकमत का दिल कांप जाता। वह झटपट उठ खड़ा होता और गुलाब को ढूंढकर अपनी गोद में उठा लेता।

नन्ही गुलाब ने भी हुकमत का एक नाम रख छोड़ा था। जब कभी वह बहुत प्रसन्न होती, तो अपनी तोतली आवाज़ में हुकमत को बार-बार बुलाया करती—"बुड्ढा!"

—हुक्मत इसे सुनता और खुशी में मस्त हो जाता।

(४)

एक दिन गुलाब, न जाने क्यों, सहसा मचल पड़ी। दोपहर का समय था। सरदी का मौसम अब ज़ोरों पर था, इस कारण इस वक्त की धूप बहुत ही मज़ेदार मालूम होती थी। इसी समय एक अंगरेज़ बच्चे को गाड़ी में बिठाकर ले जाती हुई दो हिन्दुस्तानी दासियाँ उसी सड़क पर से गुज़रीं। उसके पीछे एक अंगरेज़ दम्पति भी थे। वे लोग इस ओर सैर के उद्देश्य से आये थे। उन्हें देख कर हुक्मत ने सलाम करके भीख माँगी। गुलाब अपने खेल में मस्त थी। आज वह हुक्मत के एक-दम पास, सड़क के साथ लगकर पड़ी हुई एक बड़ी-सी चट्टान के ऊपर बैठी थी। अंग्रेज़ महिला की दृष्टि इस बालिका पर पड़ी। उसने हिन्दुस्तानी में हुक्मत से पूछा—"यह किसकी लड़की है?"

गुलाब का परिचय लोगों को देना हुक्मत को भला मालूम नहीं होता था। यह इसलिए कि उसे अपनी कन्या कह कर वह लोगों के दिलों में से उस खानदानी लड़की की इज्ज़त कम नहीं करना चाहता था। फिर भी वह मेम साहब के सवाल का इसके अतिरिक्त और उत्तर न दे सका कि यह मेरी लड़की है।

अंगरेज़ सज्जन ने आश्चर्य के साथ गुलाब की तरफ देख कर अपनी पत्नी से अंगरेज़ी में कहा—"काश्मीर के बच्चे सचमुच असाधारण सुन्दर होते हैं!"

इसके साथ ही बूढ़े के आगे एक रुपया फेंक कर वे दोनों आगे निकल गए। इसी समय गुलाब की नज़र बच्चे की गाड़ी पर पड़ी। [illegible] सहसा [illegible] होगई। वह दोनों हाथ एक-साथ [illegible] कर [illegible] लगी—"आ, आ: गाड़ी! आ:, आ:, गाड़ी!"

अब गाड़ी क्रमशः बालिका से दूर होने लगी। उसे अपनी [illegible] दूर होते देख बालिका मचल पड़ी। रोनी सूरत बना कर [illegible] लगी "ऊँ; ऊँ, मेरी गाड़ी! ऊँ, ऊँ, मेरी गाड़ी!"

हुक्मत ने एक ठण्डी सांस लेकर अपने परवरदिगार खुदा का नाम लिया और इस के बाद उसने अपनी झोंपड़ी का एक कोना खोदना शुरू किया। तीन फुट गहरा खोद चुकने पर उस में से चांदी के कुछ रुपये निकले। ये संख्या में ३६ थे। अभागे हुक्मत की सम्पूर्ण जवानी भर की यही कमाई थी। रुपये बिलकुल काले पड़ चुके थे। हुक्मत ने एक गहरी सांस लेकर इन रुपयों को रगड़ना शुरू किया। थोड़ी ही देर में वे चमचमा उठे।

फ़कीर को घबराहट इस बात की थी कि यदि वह अपने सम्पूर्ण जीवन की कमाई खर्च कर के भी गुलाब का वांछित उपहार खरीद न सका, तो क्या होगा! तो भी वह उठा। गढ़े को पूरी तरह भर कर उस ने कुटिया का द्वार बन्द किया और गुलाब को अपनी गोद में उठा कर वह श्रीनगर के लिए रवाना हो गया।

बालिका का रोना अब बन्द हो चुका था। मुमकिन है कि उसे गाड़ी की याद भूल चुकी हो! परन्तु उसका चेहरा फिर भी बहुत उदास था। गुलाब का यह उदास चेहरा हुक्मत के नरम हृदय को मथ रहा था। काश कि गुलाब एक बार फिर उसी भोली-भाली आवाज में मुस्करा तो दे। उस की एक मुस्कराहट के लिये बूढ़ा फ़कीर अब सब कुछ करने को तैयार था।

बाज़ार में पहुंच कर हुक्मत ने एक गाड़ी खरीदी। चौंतीस रुपये, छः आने में उसे एक सैकण्ड-हैण्ड, परन्तु बढ़िया गाड़ी मिल गई। हुक्मत का दिल खुश हो गया! इतना प्रसन्न वह जन्म भर में कभी न हुआ होगा। उसके पास अब सिर्फ़ एक रुपया दस आने ही बाकी बचे थे। बूढ़े ने उन्हें भी खर्च कर दिया। इन से उस ने गुलाब के लिये खिलौने खरीद लिए।

इस नई गाड़ी पर बैठ कर गुलाब खुश हो गई, और हुक्मत की तरफ़ देख कर एक बार उसने बहुत ही मधुर आवाज में पुकारा—
"[illegible]!" इस समय गुलाब सचमुच एक देवकन्या के समान प्रतीत थी। अपने दोनों हाथों को [illegible] उठा रखा था

के लिये बेचैन हो उठा था। विन्ध्येश्वरी मोटर में नहीं थी, वह अपने हाउस-बोट में ही थी। उसे यह शुभ समाचार सुनाने की प्रबल उत्सुकता में प्रमीला के तीन महीने के अज्ञातवास की आश्चर्यमय कहानी सुनने का कौतूहल भी रामप्रताप को बूढ़े के पास नहीं रोक सका। शायद उसने यही अनुमान किया हो कि बूढ़ा कहीं आसपास ही रहता होगा, प्रमीला की मदद से उसका घर पीछे भी मालूम हो जायेगा।

मोटर चल दी और देखते-ही-देखते बूढ़े हुक्मत के कोमल हृदय पर एक-साथ सैंकड़ों हथौड़ों की कड़ी चोट मार कर वह दूर पर जा कर ओझल हो गई। बूढ़ा हुक्मत अभी तक गुलाब की गाड़ी को उसी तरह पकड़े हुए खड़ा था। इस अचानक हो गए चील-झपाटे का मतलब अभी तक उस की समझ में नहीं आया था। अब मोटर के आंखों से ओझल हो जाने पर उसने अनुभव किया कि "हाय ! मुझ अभागे का तो सभी कुछ लुट गया !'

अभागे हुक्मत के दिल से बड़ी दर्दभरी आवाज़ निकली—'उफ़ ! उफ़ !!" इस के साथ ही अपना सिर पकड़ कर वह ज़मीन पर बैठ गया।

(५)

बूढ़ा हुक्मत फिर से अपने रोज़ के अभ्यस्त स्थान पर लेटा हुआ दिखाई दिया। मालूम नहीं, वहां पहुँचा किस तरह। अभागा हुक्मत अब भीख नहीं मांगता। अब वह किसके लिये भीख मांगे ? जिसके लिये बुढ़ापे में पहुंचकर भी वह जवान बन गया था, वह तो इतना शीघ्र जहां से आई थी, वहीं चली गई। फिर वह किस के लिए भीख मांगे; अपने लिये ? —निःसन्देह सारी दुनिया 'अपने लिए' जीती है, मगर अभागे हुक्मत ने मोह से, अज्ञान से अथवा वर्षों तक दिल ही में छिपे रहने वाले वात्सल्यरस के अचानक प्रादुर्भाव से जिसे एकदम अपना बना लिया था—वह तो चली गई। फिर उसका अपना-पन ही कहां गया। काश कि वह फिर से इस 'अपनेपन' को संकुचित कर

और सब अबाधित-रूप से यह प्रकृति घण्टों तक "सांय, सांय" करके रोती है । यदि कभी बरसात की किसी रात में नींद से जग कर तुम ने प्रकृति का यह महान रुदन सुना है तो अवश्य ही तुमने देखा होगा कि प्रकृति के इस रुदन में सब कहीं सन्नाटा छाया होता है, यहां तक कि पशु-पक्षी भी नहीं बोलते और सब को चुप कराके सिर्फ़ यह निष्प्राण प्रकृति एक-सी आवाज़ में टप-टप आंसू टपकाती है ।

आज बूढ़े हुक्मत के साथ प्रकृति भी रोई और ख़ूब जी भर कर रोई । बूढ़े को इस समय तक ज्वर चढ़ आया था । आसमान से पानी के साथ-साथ बर्फ़ भी पड़ने लगी थी, और इधर अभागा हुक्मत बुख़ार की गरमी में उनींदा-सा होकर बड़बड़ा रहा था । बूढ़ा ख़्वाब देखने लगा—"उस की गुलाब एक दम बड़ी हो गई और उसका ब्याह हो गया है ! आहा, हुक्मत की गुलाब का ब्याह हो गया, और उसका पति इतना धनी है कि उसके पास कई मोटरें हैं" !

मगर बूढ़े को स्वप्न में भी देर तक यह ख़ुशी नसीब न हुई । उसका ख़्वाब जारी था—"गुलाब को ससुराल गए बहुत दिन बीत गए । वह फिर कभी लौट कर नहीं आई । बूढ़े ने उसे वापस लाने के लिए एक गाड़ी ख़रीदी है, मगर गुलाब की ससुराल वाले उसे लौटने नहीं देते"।

बुख़ार की बेचैनी में हुक्मत ने जो करवट बदली तो उसका हाथ गुलाब की गाड़ी से जा टकराया । बूढ़े की नींद उचट गई । वह बड़े कातर स्वर में बड़बड़ाया—"गुलाब ! बच्ची गुलाब" !!

वर्षा अभी तक ज़ोरों पर थी । सड़क का पानी फैल कर चट्टान के पास आ रहा था । हुक्मत ने अनुभव किया कि उस के कपड़े गीले हो रहे हैं । चारों ओर घना अन्धकार था । हुक्मत सिकुड़ कर चट्टान से लग गया । चट्टान का सिरा आगे की तरफ़ बढ़ा हुआ था, इस लिए वर्षा के जल की बौछार बहुत कम हो गई । वर्षा पड़ने की

था। मगर यहाँ के आसार देखकर फ़कीर के लिये उसका हृदय कुछ चिन्तित-सा हो गया।

तीनों जने बीमार हुक्मत के पास पहुंचे। रामप्रताप ने पास ही खड़े हुए एक काश्मीरी किसान से पूछा—"क्यों, क्या बात है?

उसने जवाब दिया—"कुछ नहीं, हजूर! एक फ़कीर था, सर्दी लगने से बीमार हो गया है।"

रामप्रताप के कुछ और पूछने से पूर्व ही प्रमीला की निगाह बूढ़े हुक्मत पर पड़ गई। वह खुशी से भर कर चिल्लाई-'बुड्ढा!' इसके साथ ही अपनी मां का आंचल पकड़कर वह उसे हुक्मत के निकट ले चलने के लिये खींचने लगी।

इस बेचैनी की दशा में भी हुक्मत ने गुलाब की आवाज़ सुन ली। उसने अपनी आँखें खोल दीं। गुलाब को देखते ही उसके मृतप्राय शरीर में प्रसन्नता की बिजली-सी घूम गई। वह धीरे-धीरे कुछ बोला, परन्तु किसी को कुछ समझ न आया। गुलाब अब उसके बहुत निकट आ गई थी अपने 'बुड्ढे' को इस दशा में देख कर बालिका का अबोध हृदय भी सहम गया। वह उदास-सा चेहरा बना कर हुक्मत के बुझते हुए दीपक-से चेहरे को देखने लगी।

इसी समय रामप्रताप ने निकट आकर हुक्मत से उसका हाल पूछा, मगर हुक्मत ने उनका प्रश्न सुना ही नहीं। दिया बुझ रहा था। उसके लिये तेल आया तो सही, परन्तु बहुत देर में। रामप्रताप और विन्ध्येश्वरी ने देखा कि बूढ़ा नींद में ही कुछ गुनगुना रहा है। उस गुनगुनाहट में भी 'गुलाब' का शब्द उन्हें स्पष्ट-रूप में सुनाई पड़ा। शायद वह अपने परवरदिगार खुदा से उसके लिये प्रार्थना कर रहा था, मगर प्रमीला के माँ-बाप को भी अभी तक तो यह भी मालूम नहीं था कि 'गुलाब' उनकी कन्या का ही नाम है।

धीरे-धीरे हुक्मत बेहोश हो गया, और फिर उसकी यह बेहोशी कभी न टूटी।

किया था। यों-ही बिलकुल अचानक यजनी ने दो-चार सुन्दर तितलियों को देखा और उन्हें पकड़ने की इच्छा से वह जंगल की फूलों से भरी उन झाड़ियों में बढ़ती चली गई। प्रतिक्षण यजनी को अनुभव होता कि उसने किसी तितली को अभी पकड़ा, परन्तु हर बार तितलियाँ उसके हाथ में आते-आते रह जाती थीं। यजनी तन्मय होकर अपने इसी खेल में मस्त थी। उधर देव को अचानक कहीं प्यास प्रतीत हुई तो वह झरने की ओर बढ़ गया। दोपहर का समय था, और वह झरना देव को निमन्त्रण देता हुआ-सा प्रतीत हुआ। नंगा देव उसी क्षण पानी में कूद गया और मज़े ले-लेकर डुबकियां लगाने लगा। बहुत समय बाद वह लौटा, तो उसने देखा कि कहीं कोई भी नहीं है।

देव के हृदय में पहली बार चिन्ता का जन्म हुआ। वह भेदती-सी निगाहों से उस घने जंगल के आर-पार देखने का व्यर्थ प्रयत्न करने लगा। इसी समय उसकी निगाह यजनी पर पड़ी, जो अभी तक एक भी तितली नहीं पकड़ पाई थी। देव बिलकुल निरर्थक, साथ ही अर्थपूर्ण ध्वनि में—'ओ-ओ-ओ' की ऊँची पुकार कर उठा। यजनी का ध्यान बँटा और चौंक कर उसने देव की ओर देखा। अचानक उसे भी ख्याल आया कि ओह, वह तो अकेली रह गई है!

किसी दैवी प्रेरणा ने देव और यजनी को एक दूसरे के साथ बांध दिया। दोनों जैसे मन-मन समझ गए कि गिरोह न सही, कम-से-कम हम दोनों को एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ना चाहिए।

जीवन में पहली बार उन्हें भय की अनुभूति हुई और इसी अनुभूति के कारण उन्हें अपने गिरोह के सान्निध्य और सुरक्षा की आवश्यकता भी अनुभव हुई, मगर अब गिरोह का कहीं कुछ पता न था। सब तरफ़ ऊँची-ऊँची घास उगी हुई थी, इससे पैरों के निशान तो दिखाई दे ही न सकते थे। वन में पक्षी चहचहा रहे थे और [illegible] की पत्तियाँ हवा में हिल-हिल कर सायँ-सायँ कर रही थीं। यजनी [illegible] एकदम निकट चली आई, और तब बहुत देर तक दोनों बड़ी

चकिता और भीता यजनी का हाथ पकड़ कर वह उसे निकट के एक आम्रवृक्ष के नीचे ले चला। वहाँ पहुंचकर अपने कन्धे और बाँह का आसरा देकर उसने यजनी को वृक्षपर चढ़ा दिया और स्वयं भी कूद-कर ऊपर चढ़ गया। झटका देकर उसने एक शाखा तोड़ ली और दो-तीन प्रमुख डालियों के उद्गम पर उसे तिरछा बिछा दिया। आम के पत्तों और छोटी-छोटी टहनियों से बीच का अन्तराल अपेक्षाकृत मुलायम बना लिया, और तब देव और यजनी तने से ढासना लगा-कर इसी मचानपर सो गए।

देव की नींद पहले टूटी। सुबह होने को थी। पूरब की ओर का सम्पूर्ण आकाश प्रकाशमान हो उठा था। उस आम्रवृक्ष-पर, आसपास तथा आसमान में सैंकड़ों-हज़ारों छोटी-छोटी चिड़ियाँ मधुर स्वर में चहचहा रही थीं। देव ने देखा, उसके निकट ही यजनी अभी तक मज़े की नींद सो रही है। अनेक क्षणों तक जागते रहने पर भी देव आलस्यवश उसी तरह लेटा रहा।

इसी समय अचानक देव की नज़र यजनी की टाँगों के एक-दम निकट पड़ी, किसी भूरी-सी, हिलती-जुलती सी चीज़पर। वह चौंककर उठ बैठा और तब यजनी की नींद भी उचट गई।

उन्होंने विस्मय के साथ देखा कि एक बन्दरी उनके अत्यन्त निकट लेटी हुई है और रात-ही-रात में उसने एक बच्चा भी दे डाला है। इन दोनों को जाग गया देखकर भी न तो वह बन्दरी वहाँ से भागी और न उठी ही। यजनी ने बड़ी प्यार-भरी दृष्टि से उस बन्दरी और उसके नए-से बच्चे की ओर देखा।

[२]

जंगल के निकट के इसी मैदान पर मानव-जाति के ये दोनों पूर्वज प्रतिदिन नये-नये आविष्कार करते रहे। कुछ ही समय के बाद क्रमशः ही उनकी पूरी घर-गिरहस्ती जम गई। एक बड़े वृक्ष की छाया में एक [illegible]

देव और यजनी ने अत्यन्त आश्चर्य और कौतूहल के साथ देखा कि यजनी एक सुन्दर-से बच्चे की मां बन गई है, और यह भी कि वह बच्चा बहुत अधिक रोता है।

ऋतुओं का चक्र चलता चला गया। बरसों पर बरस बीतते गए और देव तथा यजनी का परिवार भी बढ़ता चला गया।

[३]

बरसात के दिन थे। चारों ओर ऊँची-ऊँची घास उग आई थी। झरने का पानी कुछ गँदला-सा हो गया था। पिछले दो-तीन दिनों से वर्षा की कुछ ऐसी झड़ी लगी थी कि देव और यजनी का वह घर, जिस पर इस समय तक पत्थर की पतली-पतली प्लेटें-सी डाल दी गई थीं, लगभग जलमग्न हो गया था। वर्षा की इस झड़ी में एक बात पर देव और यजनी में परस्पर झगड़ा हो गया।

बात भी कुछ मामूली नहीं थी। पिछले अनेक बरसों में वह बन्दरी आठ-दस बच्चों की मां और पन्द्रह-बीस की दादी बन गई थी। इस प्रतिमास बढ़ते हुए परिवार के लिए सहन के दूसरी ओर एक छोटा-सा पृथक् आवरण डाल देने का प्रस्ताव देव ने किया था, परन्तु वह बूढ़ी बन्दरी यजनी की अन्तरंग सखी थी। यजनी चाहती थी कि वे सब एक-साथ एक ही छत के नीचे रहें। उसने इशारों-ही-इशारों से देव के प्रस्ताव का घोर विरोध किया, परन्तु आखिर देव पुरुष था और यजनी नारी। देव की ही विजय रही और घर के दूसरी ओर का भी एक ज़रा-सा भाग पत्थरों और पत्तों से ढक-सा दिया गया। बन्दर-दम्पति अपने पुत्र-पौत्रों समेत इसी आवरण के नीचे आ गए।

परन्तु दुर्भाग्य कुछ ऐसा रहा कि वानर-परिवार के नवगृह-प्रवेश करते-न-करते वर्षा की झड़ी लग गई। यह स्थान अपेक्षाकृत नीचाई पर था। और पिछली रात जो ज़ोर की वर्षा हुई थी, उसकी बदौलत वह पानी-ही-पानी हो गया। सभी बन्दर रात-भर पानी में भीगते

मानो ये सब प्राणी मिल कर एक-साथ देवको पुकार रहे हों।

सहसा दूर पर, जंगल के अन्धकार में से ही, एक चीख सुनाई दी, और उसके कुछ ही क्षणों बाद बहुत ही व्याकुल दशामें घर की ओर दौड़ कर आता हुआ देव दिखाई पड़ा। रजनी भाग कर उसके निकट पहुँची और सभी बन्दरों ने एक साथ उसे घेर लिया, परन्तु, न-जाने क्यों, देवका बहुत बुरा हाल था। उसका शरीर नीला-सा पड़ता जा रहा था और मुँह से झाग बह रहा था। चलने-फिरने की उसमें सामर्थ्य बाकी नहीं रही थी। रजनी बड़ी कठिनता से उसे आसरा देकर अपने घर के भीतर तक ले आई।

छतके नीचे पहुंचते ही देव जैसे निश्शक्त-सा होकर गिर पड़ा। रजनी चीखती-सी पुकार से गों-गों कर उठी। मानो वह पूछ रही हो—"नाथ तुम्हें यह क्या हो गया?"

देवने अपने पैरोंकी ओर संकेत किया और इशारे-ही-इशारेसे बताया "यह जो काला-काला लम्बा-सा कीड़ा कभी-कभी झाड़ियों के आस-पास रेंगता हुआ मिलता है, जिसे देखते ही आसमानपर के सभी पक्षी एक-साथ चीखने-चिल्लाने लगते हैं, वही मुझे पैर की इस उंगली पर काट गया है।"

रजनी को कुछ भी नहीं सूझा कि इस दशामें क्या करना चाहिये। किसी अज्ञात आशंका से उसका हृदय कांप गया। उसकी आंखों में आंसू भर आए। देव सूखे पुआलके ढेर पर लेटा हुआ था। रजनी पूरी शक्ति के साथ उसका शरीर दबाने लगी। अपने पुत्रों से भी उसने इशारा किया कि वे देवका सिर, पैर और टांगें सहलाएँ। सभी बन्दर शोकपूर्ण मुद्रा बनाए पास ही बैठ गए।

धीरे-धीरे देव को ऊंघ-सी आने लगी। उसके मुंह से झाग निकल रहा था और श्वास घरघराहटके साथ बड़ी तेजीसे चल रहा था। रजनी स्पष्ट देख रही थी कि देव अत्यन्त कष्ट में है; परन्तु उसे [illegible] नहीं था कि वह क्या करे। इस कष्ट का परि-

लालिमा जब आकाश में फटने लगी, तब बड़े साहस के साथ उसने देव के शरीर को हिलाया, जैसे वह उसे जगाना चाहती हो। परन्तु देव नहीं जागा। यजनीने समझा वे अभी तक गहरी नींदमें सो रहे हैं, उन्हें छेड़ना उचित नहीं।

प्रातःकाल सभी बन्दरोंने पुनः देवको घेर लिया। सबका खयाल था कि देव अभी सो रहा है। सभी के चित्त किसी अनिर्वचनीय, अज्ञात आशंकासे भरे हुए थे, मगर सभी के लिए वह आशंका पूर्णरूप में अबुद्धिगम्य थी।

सूरज आसमान में चढ़ आया, और देवकी नींद नहीं टूटी। यजनी इस समय तक बेहद घबरा गई। वह बार-बार जाकर देवको हिलाती थी, जगाती थी परन्तु देव ऐसी गहरी नींद में सोया था, जो नींद टूटने में ही न आती थी।

बहुत दिनोंके बाद आज बादल छँटे थे। देव और यजनी के सभी मित्र उनसे मिलने के लिए वहां आने लगे। रीछ, हिरण, भैंसे, खर-गोश, तोते, चिड़ियां—सभी वहां एकत्र हो गए। यजनी के आदेश पर बन्दरोंने एक ओर का घेरा तोड़ डाला, और सभी जीव-जन्तु भीतर आकर देवके आसपास बैठ गए। देव अभी तक निद्रित पड़ा था, और किसी को यह न समझ पड़ता था कि उसकी नींद किस तरह तोड़ी जाये।

दोपहर होते न होते हाथी भी वहां आ पहुंचा। आज वह बड़ा खुश था, परन्तु देवके घरके निकट पहुंचते-न-पहुंचते उसका हृदय भी किसी आशंका से भर गया कि वायुमंडल में व्याप्त इस गहरी उदासी का कारण क्या है।

शीघ्रता से हाथी झरने की ओर गया और अपनी सूंड में जितना पानी समा सका भरकर ले आया। वह पानी उसने एक साथ देवके शरीर पर उलट दिया, और इसके साथ-ही-साथ चिंघाड़ मारकर वह गरज उठा, मानो अपने मित्र के साथ किए गए इस मजाक का मजा रहा हो।

परन्तु देव तब भी नहीं जागा।

[illegible], परन्तु [illegible] यक्षी [illegible]
है वह देवको [illegible]। परन्तु देवकी नींद तब भी नहीं
टूटी।

तब हाथी दौड़ा हुआ बाहर की ओर भागा। निकट ही से वह [illegible]
[illegible] और [illegible] यक्षी के नजदीक
[illegible] कि [illegible]
[illegible], मैं [illegible] आया।

यक्षी [illegible] और [illegible] कर [illegible]
[illegible] परन्तु [illegible]
[illegible] कुछ भी नहीं जा सका।

इसी समय हाथी वापस लौटा। अपने यह अनेक तरह के
सुगन्धित फूल और पत्तियाँ अपने साथ लाया था। इन फूल-पत्तों से
उसने देवके शरीर को ढक दिया।

सारा दिन देवको जगाने के प्रयत्न जारी रहे, परन्तु वह नहीं
जागा। इसी यत्न में पुनः रात हो गई—रात, जो सोने के लिए बनी
है। रात में देव को क्यों जगाया जाय। उसे सोने दो। रातभर जाग
कर यक्षी उसकी सेवा करेगी।

क्रमशः दूसरा दिन भी निकल आया। देवको आज तो जगाना
ही होगा। इतना लम्बा सोना भी किस कामका। यह काम आज
बन्दरों ने अपने जिम्मे लिया। हाथी आज चुपचाप और गुमसुम-सा
था। जैसे वह देवसे रूठ गया हो, अथवा उसकी ओर से निराश हो
गया हो। बन्दर देव के शरीर में गुदगुदी करने लगे। जबरदस्ती,
परन्तु प्यार के साथ, उसका मुँह और आँखें खोलने लगे। परन्तु देव
फिर भी नहीं जागा।

यक्षी के हृदय का सम्पूर्ण उत्साह अब तक नष्ट हो चुका था।
उसे कुछ समझ ही नहीं आता था कि आखिर इतना अचानक
सब क्या हो गया। देवकी यह कैसी दशा हो गई! आज

कभी ऐसा हुआ नहीं था। उनकी नींद क्यों नहीं टूटती? उन्हें अब भूख क्यों नहीं लगती? वह अब सांस क्यों नहीं लेते? उनका शरीर अब ठण्डा क्यों पड़ गया है? वह अब जागते क्यों नहीं? देव! तुम कब जागोगे? मैं नासमझ नारी हूँ। मैं ग़लती पर थी। मेरा अपराध था। आगे से मैं कभी तुम पर नाराज़ नहीं होऊँगी। ओह नाथ! तुम जागते क्यों नहीं?

परन्तु देव तब भी नहीं जागा।

सांझ होते-न-होते एक नई बात उन लोगों को अनुभव हुई। देव के शरीर पर कल जो फूल-पत्तियाँ डाली गई थीं, इस समय तक वे सब मुरझा चुकी थीं, और अब वहां से एक असह्य-सी दुर्गन्ध आने लगी थी। किसी को कुछ भी समझ न पड़ा कि यह मामला क्या है? फिर भी जैसे किसी अन्तःप्रेरणा से यजनी सब कुछ समझ गई। ओह, उसके नाथ नहीं जागे और अब उनके शरीर से दुर्गन्ध भी आने लगी है।

रात को वह दुर्गन्ध और भी बढ़ गई। यहां तक कि घर भर में किसी से सोया नहीं गया।

तीसरे दिन देव की दशा और भी बिगड़ गई। उसका शरीर काला और पिलपिला-सा हो गया। आंखें बैठ गईं और आकार बहुत भयावना हो उठा। दुर्गन्ध अत्यधिक बढ़ गई। यह सब तो हो गया परन्तु देवकी नींद नहीं टूटी।

क्रमशः देव के सभी मित्र वहां एकत्र हो गए—मनुष्य, पशु पक्षी सभी। तीव्र दुर्गन्ध से सभी का चित्त व्याकुल हो रहा था, परन्तु जैसे किसी की समझ में ही न आता था कि अब किया क्या जाय। देव उनके सामने सोया हुआ है, उसकी दशा इतनी अधिक बिगड़ गई है, फिर भी वह जागता क्यों नहीं! वह जाग ही नहीं सकता।

सब से पहले हाथी ने साहस किया। यजनी के समान वह भी [illegible] से देवकी ओर से निराश हो चुका था। [illegible] वह [illegible] उसके [illegible] थे। आगे बढ़ कर वह

गल्पसंग्रह—विपथगा ।

उपन्यास—शेखर ।

इनकी रचनाशैली बड़ी ही सरस और आकर्षक है । पढ़ते हुए जी नहीं ऊबता । भाषा भी स्वाभाविक और रुचिकर है ।

अकलंक

(१)

वे दोनों उस टीले की चोटी पर खड़े थे । चारों ओर काले-काले बादल घिरे हुए थे, मूसलाधार वर्षा हो रही थी, टीले के नीचे घहराता हुआ ह्वांग-हो नदी का प्रवाह था, और जहाँ तक दृष्टि जाती थी, पानी-ही-पानी नज़र आता था !

वे दोनों वर्षा की तनिक भी परवाह न करते हुए टीले के शिखर पर खड़े थे ।

वह चीनी प्रजातन्त्र सेना की वर्दी पहने हुए था, और भीगता हुआ सावधान मुद्रा में खड़ा था ।

स्त्री ने एक बड़ी-सी खाकी बरसाती में अपना शरीर लपेट रखा था । उसके वस्त्राभूषण कुछ भी नहीं दीख पड़ते थे । उसने वेदना से भरे स्वर में कहा—"मार्टिन, तुम्हें भी अपना घर डुबा देना होगा । मेंड़ काट देना, नदी स्वयं भर आयेगी ।"

मार्टिन, कुछ देर चुप रहा । फिर बोला—"किस, क्या इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है ?"

स्त्री ने चौंक कर कहा—"मार्टिन, यह क्या ? सेनापति की जो आज्ञा है, उसका उल्लंघन करोगे ?"

"उल्लंघन नहीं । लेकिन अगर बिना शत्रु को आश्रय दिये ही घर बच जाय, तो क्यों न बचा लिया जाय ?"

"औरों के भी तो घर थे"

[illegible] किसान थे । मैं राष्ट्र का सैनिक हूँ । शायद घर को [illegible]

"मार्टिन, तुम्हें क्या हो गया है ? तुम [illegible] क्या करोगे ? हम [illegible] यहाँ से कहाँ जायेंगे। शत्रु के लिए इतना विशाल भवन छोड़ दोगे, जो हमारे अभिमान का [illegible] होगा ? तुमने [illegible] पर कृपा किये हैं, केवल इसी लिए कि शत्रु को [illegible] न मिले। और तुम अपना [illegible] रह जाओगे ?"

"मेरा घर इतना विशाल है कि उसमें समूचा गाँव आकर रह सकता है।"

"इसी लिए तो उसे जलाना अधिक आवश्यक है। मार्टिन, सम्पत्ति का [illegible] मोह [illegible]!"

मार्टिन को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो किसी ने उसे थप्पड़ मार दिया हो। तमक कर बोला—"क्रिस, यह मोह नहीं है।"

फिर एकाएक पास आकर उसने कहा। "क्रिस, अभी तुम्हें नहीं समझा सकूँगा कि क्या चाहता हूँ, किन्तु विश्वास रखो, मैं जो करना चाहता हूँ, उसी में देश का भला है। तुम इतना विश्वास नहीं करती ?

स्त्री घूम कर और अलग हट कर खड़ी हो गई। बोली—"तुम अपना कर्तव्य नहीं कर रहे, मैं तो यही समझ पाती हूँ। सैनिक हो, सेनापति की आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हो। इससे अधिक क्या तुम सोच रहे हो, कौन गुरुतर कर्तव्य है—मैं नहीं जानती, न जानना ही चाहती हूँ।" वह पूरी तरह घूम कर टीले से उतर चली।

मार्टिन क्षण-भर तक स्तब्ध रह गया। फिर उसने व्यथित स्वर पुकारा—"क्रिस्टाबेल, क्रिस्टाबेल !"

किन्तु क्रिस्टाबेल ने मुँह फेर कर देखा भी नहीं।

मार्टिन ने एक लम्बी साँस ली, और टीले से दूसरी ओर उतरने लगा। उतर कर वह जल्दी-जल्दी क़दम रखता हुआ चला। कोई मील-भर जाकर वह एक बड़े भवन के पास पहुँच गया। उसने दरवाज़े पर से ही आवाज़ दी—"कोई है ?"

एक भृत्य आकर सामने खड़ा हो गया। मार्टिन ने तीव्र दृष्टि

उसकी ओर देख कर कहा—"तीन घोड़े ले आओ और पहनने को कपड़े। जीन एक ही घोड़े पर डालना।

भृत्य ने अत्यन्त विस्मय के स्वर में कहा—"यहीं पर ?"

"हाँ, यहीं ! फौरन !"

भृत्य भवन के अन्दर गया और कपड़े ले आया। मार्टिन ने कपड़े ले लिए, और बोला—"कपड़े मैं स्वयं पहन लूंगा, तुम घोड़े ले आओ ?"

भृत्य चुपचाप चला गया। जब वह घोड़े लेकर आया, तब मार्टिन वस्त्र बदल चुका था और घुड़सवारी के उपयुक्त वेश में खड़ा था। घोड़ों के आते ही वह एक पर सवार हो गया और बोला—"मेरी बंदूक ले आओ।"

भृत्य दौड़कर बन्दूक ले आया। फिर भृत्य ने आदरभाव से पूछा—"कब लौटना होगा ?" मार्टिन ने घोड़े को एड़ी लगाते हुए कहा—"तुमसे मतलब ?"

थोड़ी देर में घुड़सवार, उसका घोड़ा और उसके अनुगामी दोनों घोड़े भी आंखों से ओझल हो गये। भृत्य तब तक वहाँ खड़ा उन्हें देखता रहा, विस्मय का भाव उसके मुख पर उसी भाँति बना रहा।

(२)

"तुमने सुना ? मार्टिन विद्रोही है।"

"क्यों ? कैसे ? क्या हुआ ?"

वर्षा हो रही थी। एक छोटे-से मैदान में बहुत से स्त्री-पुरुष एकत्र थे। प्रत्येक के पास एक-आध छोटी गठरी थी, जिसमें उन्होंने अपनी ऐहिक सम्पत्ति बाँध रखी थी। किसी-किसी भाग्य-शाली के पास एक गधा भी था, जिस पर उसने कुछ सामान लाद रखा था। अनेक स्त्रियों को घेरे हुए, उनकी गोद में, छोटे-छोटे बच्चे भी थे। सब-के-सब सर्दी से ठिठुर रहे थे, किन्तु कोई भी इसकी शिकायत नहीं कर रहा था। सबके मन में एक ही बात थी कि [illegible]

छिपी हुई पीड़ा और [illegible] उत्पन्न हो जाएगी, तो फिर दुबारा आरम्भ हुआ [illegible] के कारण ही वे अब तक [illegible] हुए थे। [illegible] पर, [illegible] से, एक ही बात [illegible] थे, क्योंकि [illegible] ही [illegible] के लिए दूसरे गाँव से [illegible] पीछे जाते थे [illegible] फिर भी, [illegible] अपनी ही [illegible] भूमि और [illegible] को प्राणों से भी अधिक चाहते हैं।

[illegible] के [illegible] शुरू हुई। [illegible], जो अब तक प्रतीक्षा-पूर्ण [illegible] से मार्टिन के घर की ओर देख रहा था, अब यह समाचार लेकर [illegible]।

"क्यों? कैसे? क्या हुआ?"

"तुमने सुना नहीं? उसने कहा है कि मैं सेनापति की आज्ञा मानने को बाध्य नहीं हूँ। जो उचित समझूँगा, करूँगा।'

"तुम्हें किसने कहा?"

"कप्तान [illegible] उसे कहने गये थे, उन्हीं से उसने यह बात कही है।" [illegible] बाद ही वह घर से तीन घोड़े लेकर कहीं चला गया है।"

लोग अब तक थके हुए और उन्मन बैठे थे, अब मानो वेदना की तन्द्रा से जागे और पूछने लगे—"अब क्या होगा?" अनेक मुखों में अनेक प्रकार की आलोचनाएँ होने लगीं।

"होगा क्या? विद्रोही है तो कोर्ट-मार्शल होगा।"

"विद्रोही तो नहीं, बल्कि कायर है! विद्रोह करने के लिए भी हिम्मत चाहिए।"

"कायर को भी कोर्ट-मार्शल से प्राणदण्ड मिलेगा।"

"अब तक हम उसे कितना अच्छा समझते थे!"

एक वृद्ध ने, जो अब तक चुपचाप तमाखू चबा रहा था उसे थूक कर, कहा—"भई, तुम लोग चाहो तो कहो, मुझे तो उसका विश्वास है। इतना सीधा, इतना सदय, दूसरों का भला करने वाला और त्यागी आदमी विद्रोही हो सकता है, यह मेरा मन नहीं मानता।

याद है, महामारी में उसने कैसे गाँव में रहकर दिन-रात सेवा की थी ? कहाँ-कहाँ से डाक्टर बुलाये थे, दवाइयाँ मँगाई थीं ? जिस दिन मेरा लड़का बीमार हुआ",—कहते-कहते वृद्ध की आँखें डबडबा आईं—"उस दिन सारी रात वह उसके पास बैठा रहा। मैंने कई बार कहा, अब चले जाओ, सोओ पर नहीं माना। हमीं से कहता रहा; तुम थके हुए हो, थोड़ा आराम करलो, कल अच्छा हो जायगा, पर बेचारे को अच्छा ही नहीं होना था !" कुछ रुक कर फिर—"और अब तक भी, हमें जिस चीज़ की ज़रूरत होती है, उसी के पास जाते हैं कि नहीं ? तुम चाहे, जो कहो, मैं तो यही कहूँगा कि उसका नाम जिसने अकलंक रखा, ठीक रखा। वह इसाई है तो क्या हुआ ? मैं तो उसे हमेशा अकलंक कहूँगा।"

एक युवक बोला "दादा, इतने जोश में न आओ। वह हमारी भलाइयाँ तो करता रहा है; लेकिन क्या इससे उसको कीर्ति नहीं मिलती ? और फिर जो भीरु होते हैं, वे प्रायः अच्छे भी जान पड़ते हैं, क्योंकि उनमें बुरा करने की हिम्मत ही नहीं होती !"

विवाद ऐसा था कि प्रातःकाल होने तक समाप्त न होता; पर एकाएक कुछ दूर पर से एक स्त्री के चीखने का स्वर आया। लोग चौंक कर चुप हो गए, दो-तीन ने पुकार कर पूछा—"क्या हुआ ?"

किन्तु यह प्रश्न व्यर्थ था, इसका कोई उत्तर भी नहीं मिला। एक विधवा की लड़की पाँच-छः दिन से न्युमोनिया से पीड़ित थी, वह इस घोर शीत को नहीं सह सकी। एक ही हिचकी के झटके से वह इस लोक के बन्धन को तोड़ कर चली गई थी। उसी की माता रो रही थी।

लोगों का साहस टूटने के बहुत निकट पहुँच गया। उन्हें एकाएक अपने जीवन की तुच्छता और असारता का बोध हो आया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि कोई अदृश्य क्रूर और निर्दय अनिष्ट उनके सिर पर मँडरा रहा हो। उस अमानुषी शक्ति की उपस्थिति के ज्ञान से सब स्तब्ध होकर एक-दूसरे का मुख देखने लगे, किन्तु कोई

मार्टिन अपने घर के बाहर ही टहल रहा था। क्रिस्टाबेल को आते देखकर रुक गया और एकटक उसकी ओर देखने लगा।

क्रिस्टाबेल ने बिना भूमिका के कहा—"मार्टिन, यह क्या सुनती हूँ ?"

"यही सुना होगा कि अकलंक अब कलंकी हो गया है ?"

क्रिस्टाबेल यह बात सुनकर सहम गई और सहसा कुछ कह नहीं सकी।

मार्टिन ने स्वयं ही फिर कहा—"क्रिस्टाबेल, मैं तुम्हें कह चुका हूँ कि मैं देश का भला सोच रहा हूँ। सारा गाँव मेरे विरुद्ध है, क्या तुम भी मेरा विश्वास नहीं कर सकतीं ?"

"मैं तो विश्वास करती हूँ, तुम स्वयं ही मुझसे कुछ छिपा रहे हो।"

"अगर कर्तव्य कोई बात छिपाने को कहे—"

"मेरे प्रति क्या कोई कर्तव्य नहीं है ?"

"क्रिस, मुझे अधिक पीड़ित न करो। मैं विवश हूँ, इतना जान लो।'

क्रिस्टाबेल फिर बहुत देर तक चुप रही। फिर एक लम्बी साँस लेकर मुँह फेर कर चल दी।

"कहाँ जा रही हो, क्रिस ?"

क्रिस ने दबे हुए उद्वेग के स्वर में उत्तर दिया—"कहीं नहीं, अपना कर्तव्य मुझे भी निश्चित करना है।

"क्रिस, तुम नाराज़ हो गईं ?

क्रिस ने कुछ उत्तर न दिया और चल पड़ी।

"अगर मैं कारण बता दूँ, तो विश्वास करोगी ?"

क्रिस एकाएक ठिठक गई और बोली—"क्या ?"

मार्टिन बहुत देर तक स्थिर-दृष्टि से उसके मुख की ओर देखता रहा, कुछ बोला नहीं। फिर—"नहीं, विश्वास मोल नहीं लिया [illegible] जा सकता।"

लगा, मानों उसी से उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हो।

थोड़ी देर बाद वह धीरे-धीरे गाने लगा—

पिघलेंगे कब पत्थर ? लोहा पानी होगा ?
जीवन की इस निविड़ रात्रि में दिन भी होगा ?
अन्तर्पट पर कोई लिख-लिख
जाता—'अरे ज़रूर !'
क्या है ? क्रूर काल की गति है, तो भी क्या है ?
मैंने भी तो आज मृत्यु को साथ लिया है ?
प्राणों की है होड़, देख लें
कौन निकलता शूर !
भाग्य रे निष्ठुर क्रूर !"

(७)

मार्टिन के विशाल भवन के चारों ओर सैनिकों का पहरा था; किन्तु सैनिक प्रजातन्त्र के नहीं थे। मकान के अन्दर से गाने की ध्वनि आ रही थी; किन्तु वे प्रजातन्त्र के राष्ट्र-गीत के स्वर नहीं थे। मार्टिन के भवन पर आज शत्रुसेना का अधिकार था, आज देश के सात सौ शत्रु उसमें आश्रय पा रहे थे और अधिकाधिक दक्षिण की ओर बढ़ने के मनसूबे बाँध रहे थे।

और भवन के बाहर चारों ओर पतली कीच थी। काली-काली, केवल कहीं-कहीं भवन से आने वाले प्रकाश के कारण दीप्त।

भवन से दूर पर छोटे-छोटे पेड़ों के झुरमुट में क्रिस्टाबेल खड़ी थी। उसके पास ही एक पेड़ से घोड़ा बँधा था। क्रिस्टाबेल एकाग्र दृष्टि से भवन की ओर देख रही थी। किन्तु ध्यान से देखने पर मालूम हो जाता था कि उसकी आँखें उधर लगी होने पर भी ध्यान उधर नहीं था।

भवन के अन्दर शायद कोई उत्सव हो रहा था—और इसीलिए कभी-कभी शायद अग्नि की ज्योति के कारण उसके अन्दर प्रकाश बढ़ जाता था। इस प्रकाश की एकाकी झलक रात्रि के अन्धकार

के झुरमुट की ओर बढ़ा। जब वह पास आ गया, तब फिर क्रिस्टाबेल बोली—"साइमन, मैं हूं क्रिस्टाबेल"

उस व्यक्ति ने पिस्तौल छिपा लिया, और बोला—"तुम यहां कहां?"

"और तुम?"

"मैं कार्यवश आया था।"

"क्या कर रहे थे?"

"ज़रा देर ठहरो, अभी जान जाओगी" कह कर वह रुक कर चुपचाप भवन की ओर देखने लगा। क्रिस्टाबेल भी उधर देखती रही।

एकाएक क्रिस्टाबेल को प्रतीत हुआ, भूकम्प हो रहा है, उसके पैर लड़खड़ाये, घोड़ा भी एकाएक हिनहिनाया, वातावरण में मानो एकाएक घोर दबाव-सा पड़ा—क्रिस्टाबेल ने आंखें बन्द करलीं—

धड़ाक—धम्म!

एकाएक बीसियों तोपों का-सा स्वर हुआ, क्रिस्टाबेल का सिर भन्ना गया, कान बहरे हो गये। एक मिनट तक वह कुछ कर नहीं सकी। फिर उच्च स्वर में बोली—"यह क्या है?"

प्रश्न व्यर्थ था। धमाके से मार्टिन का विशाल भवन एकाएक उड़ गया था—और उसके छिन्न-भिन्न अवशेष न-जाने कहां-कहां फैल गये थे। दो-चार टुकड़े उस झुरमुट से कुछ दूरी पर गिरे थे।

यही सब देख कर साइमन ने क्रिस्टाबेल को उत्तर नहीं दिया बोला—"मैं तुम्हारी तलाश में था।"

"क्यों?"

"एक पत्र है, मार्टिन का।"

"हैं? तुमने कैसे पाया?"

"उस ने किसी प्रहरी के हाथ भिजवाया था, वह मुझे दे गया।"

प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा कुछ बोल...

उसका अभिप्राय समझ कर कहा उस...

...हो गई।"

क्रिस्टाबेल फिर कुछ देर खड़ी रही। साइमन ने पत्र उसकी ओर बढ़ाया, उसने ले लिया। साइमन ने दियासलाई जला कर प्रकाश किया, क्रिस्टाबेल पत्र पढ़ने लगी।

पत्र पढ़ कर जब उसने साइमन की ओर देखा, तब उसकी तिरस्कार और विद्रोह का भाव उसकी आँखों में शेष नहीं था। उसने पूछा — "साइमन, सच बताओ, यह प्रबन्ध तुमने कब किया था?

"यह प्रबन्ध मेरा नहीं, मार्टिन का था।"

"हैं?"

"यह पुलिस हैडक्वार्टर गुप्त कार्यकारिणी का प्रबन्ध था। उसने बन्दी होने से पहले मुझे कहा था कि इन पत्रों में आग लगा आऊँ। मैं कल भी आया था। पर कल वह जीता था, जला नहीं।"

क्रिस्टाबेल के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। वह बिजली से ताड़ित लता की तरह ज़मीन पर पड़ गई।

मिनट-भर बाद जब उसे होश आया, तब रोते स्वर से बोली — "तुम ने पहले नहीं कहा? अगर मैं जानती—कल तक भी जानती..."

इसके आगे उसका स्वर रोने के आवेग में अस्पष्ट हो गया।

साइमन ने हिचकिचाते हुए स्वर में कहा — "बहन, धैर्य धरो—"

क्रिस्टाबेल बिजली की तरह उठी और घोड़े की लगाम पेड़ से खोल कर सवार हो ली। साइमन ने पूछा — "कहाँ-कहाँ चली?"

क्रिस्टाबेल ने कोई उत्तर नहीं दिया, हाथ का पत्र साइमन की ओर फेंक कर घोड़ा दौड़ाती हुई निकल गई।

जब साइमन का विस्मय कुछ कम हुआ, तब वह फिर दियासलाई जला कर पत्र पढ़ने लगा —

"क्रिस्टाबेल, कल मुझे प्राणदण्ड हो जायगा, इस लिए आज अन्तिम विदा ले रहा हूँ। हमारा विच्छेद तो उसी दिन हो गया था, जिस दिन तुम्हारा विश्वास उठ गया, किन्तु अभ्यासवश विदा माँग रहा हूँ।

"सुनो, क्रिस्टाबेल, जाते हुए एक बात कहे जाता हूँ। मैं कायर

नहीं हूँ, इस बात का विश्वास मैं तुम्हें उसी समय दिला सकता था, जब तुम ने पूछा था; पर तुम विश्वास नहीं कर सकीं! मुझे तुम से विश्वास की—सहज स्वाभाविक, अटल विश्वास की—आशा थी। यह आशा प्रत्येक मनुष्य करता है। तुम वैसा विश्वास नहीं दे सकीं। अगर प्रत्येक बात में विश्वास का पात्र होने के लिए प्रमाण देना पड़े, तो ऐसे विश्वास और प्रेम का क्या मूल्य है? अगर तुम विश्वास-भर कर लेतीं!

"दो एक दिन में मैं नहीं रहूँगा। तब तक या उस के बाद—तुम्हें 'प्रमाण' भी मिल जायेंगे कि मैं कायर नहीं हूँ। इसी से कहता हूं, अगर अब तुम किसी से प्रेम करो, तो ऐसा व्यक्ति चुनना, जिसका तुम अकारण विश्वास कर सको। एक कायर से इतनी ही शिक्षा ग्रहण कर लो!

"अब मेरे हृदय में शान्ति है। अपना हृदय टटोल कर देख लेना, उस में क्या है।—मार्टिन।"

पत्र पढ़ चुकने पर साइमन ने एक लम्बी सांस ली और धीरे-धीरे एक ओर को चल दिया।

(८)

"अरे तुम सब को क्या हो गया है? कहाँ पागलों की तरह भागे जा रहे हो?"

"तुम्हें नहीं मालूम? एक कायर को प्राणदण्ड मिल रहा है।"

"मार्टिन को? उस का फ़ैसला हो गया?"

"कल ही"

"क्या? उस ने कोई सफ़ाई नहीं दी?

"नहीं। जब उस से पूछा गया, तब बोला, 'मैं सैनिक हूँ। सैनिक स्वभावतः विश्वास का पात्र होता है। मैं सफ़ाई देकर विश्वास मोल नहीं लेना चाहता'।"

"इतनी अकड़? मालूम होता है, कायर के भी कुछ दिल है!"

"और भी सुनो! जब दण्ड सुनाया गया, तब [illegible] ने

वह विस्टायंस लड़की की सहेली भी थी। इन दोनों की शादी होने वाली थी। तब मार्टिन बोला—"हाँ, मेरी ओर से भी बधाई दिला दीजिएगा।"

"फिर?"

"फिर बोला—आपने मुझे कायर कहा है, और प्राण-दण्ड दिया है। प्रजातन्त्र के एक सैनिक की हैसियत से मैं दण्ड स्वीकार करता हूँ। पर एक प्रार्थना है कि दण्ड देते समय मुझे कायर की तरह पीठ में गोली न मारी जाय! मैं कायर नहीं हूँ'!

"फिर?"

जज ने पूछा—"इसका सबूत?" पर बेचारा सबूत क्या देता? चुप हो गया। जज ने कुछ सोच कर कहा—'मैं विवश हूँ।' फिर कुर्सी को ले गये।"

भीड़ को चीरता हुआ एक घोड़ा आगे आ रहा था, इन दोनों व्यक्तियों के पीछे-पीछे चल रहा था। उस पर सवार एक स्त्री इस चेष्टा में थी कि मौक़ा मिलने पर आगे निकल जाय। बातें सुन कर वह व्यथित, मर्म-विलिप्त स्वर में बोली—"अरे, यह सब मैं सुन चुकी हूँ,—फिर क्यों दुहराते हो? बताओ, दण्ड होने में कितनी देर है?

दोनों व्यक्ति चुपचाप एक ओर हट गये और उनकी ओर देखने लगे। उसने अपना प्रश्न दुहराया।

"पन्द्रह-बीस मिनट होंगे—"

"बस?" कह कर विस्टायंस ने घोड़े को चाबुक मारा-चाबुक से अनभ्यस्त, थके-माँदे, किन्तु अभिमानी, घोड़े ने सिर उठा कर फुँकारा और फिर तिलमिलाकर भीड़ को चीरता हुआ दौड़ने लगा। किसको धक्का लगा। कौन गिरता है, अपने अपमान में वह सब भूल गया।

दोनों व्यक्तियों ने एक-दूसरे की ओर देखकर कहा—"[illegible] है!" और फिर आगे [illegible] [illegible]

[६]

उस चौक के आस-पास तीनों ओर खचाखच भ[illegible]
थी। चौथी ओर, दीवार की छाया में एक शहतीर ज़मी[illegible]
हुआ खड़ा था, जिसके साथ सैनिक मार्टिनको बांध रहे थे
तीर के साथ सटा कर, मुँह दीवार की ओर करके खड़ा कर
मार्टिन चुपचाप निष्क्रिय होकर देखता जाता था, मानो वह
नय का प्रधान-पात्र न होकर एक दर्शकमात्र हो।

भीड़ उस क्रिया को देखती जाती थी और आलोचन[illegible]
जाती थी—"कैसा मरियल-सा खड़ा है—जैसे अफ़ीम
हो!"

"अरे, कायर को हौसला थोड़े ही होता है?"

"कल तो बड़ी शान से खड़ा था—जज को भी घुड़[illegible]
था!"

"अरे, जब तक मौत सिर पर नहीं आती, तब तक भी[illegible]
घुड़कियां दिखाते हैं। पता तो तब चलता है, जब सामना
है।"

भीड़ की आलोचना सदा बड़ी पैनी और निर्मम होती है,
मार्टिन पर उसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। शायद इसी से [illegible]
चना प्रखरतर होती जा रही थी।

थोड़ी ही देर में बांधने की क्रिया पूरी हो गई। सैनिक सहा
हट गये।

उस शहतीर से पचास क़दम की दूरी पर सैनिकों की [illegible]
क़तार खड़ी थी; और उनसे कुछ दूर हटकर एक [illegible]
जिसके आदेशानुसार सब काम हो रहा था। [illegible] एक बार [illegible]
ओर देखा, भीड़ के एक भाग को पीछे हटने का इशारा किया, [illegible]
[illegible] [illegible]-पंक्ति का [illegible] [illegible] [illegible]।